आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

सहयोग राशि
30/-₹

फ़रवरी 2022

क्रान्ति

मासिक

धर्म

बनाम

‘‘धर्म संसद’’

वसुधैव कुटुम्बकम



जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनके भी अपराध



HousE of WisdoM

ISLAMIC BOOKS | AUDIO / VISUALS | GIFTS / PRODUCTS

Students Centre, Opp. Law College,
Miramar, Panjim, Goa

Call: 0832 2462632, 9822163132

hikmahfoundationgoa@gmail.com, www.jihgoa.org

Please Visit

Address : Shop No 1, Opposite Law College, Miramar,
Db Marg, Panjim, Near Dr Supriya Kamat, Panaji-403001

www.kanti.in

संपादक
शिब्ली अरसलान
editorkantimasik@gmail.com

प्रबंधक
नईम ख़ान
+91 9891160829

सहयोग राशि

एक प्रति 30/- रु०	एक वर्ष 350/- रु०
दो वर्ष 670/- रु०	तीन वर्ष 950/- रु०
चार वर्ष 1200/- रु०	पांच वर्ष 1400/- रु०

आजीवन रु० 4000/-
सऊदी अरब और खाड़ी के देशों के लिए 110/- रियाल
यूरोप व अमेरिका के लिए 40/- US डॉलर

ख़रीदार बनने, एजेंसी लेने, प्रचार-प्रसार एवं प्रबंधकीय मामलों के लिए सम्पर्क करें :

कार्यालय :
कान्ति मासिक, डी-314, दावत नगर,
अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर,
ओखला, नई दिल्ली-110025

हेल्पलाइन न०
+91 8920589292

Account Detail
NAME : KANTI
A/C NO : 0990839195
IFS CODE : IDIB000J029
TYPE : CURRENT
BANK : INDIAN BANK
BRANCH : JAMIA MILLIA ISLAMIA
NEW DELHI - 110025

चेक / ड्राफ्ट 'कान्ति' के नाम से बनवाएं

मुद्रक एवं प्रकाशक मुहम्मद अहमद द्वारा दावत ट्रस्ट (रजि०), डी-314 दावत नगर, अबुल फ़ज़्ल इन्कलेव, जामिया नगर, नई दिल्ली-110025 से प्रकाशित एवं भारत ऑफ़सेट प्रेस, 2035, क़ासिम जान स्ट्रीट, बल्लीमारान, दिल्ली - 110006 से मुद्रित।
फ़ोन: 9818799223
संपादक: शिब्ली अरसलान

संस्था की लिखित अनुमति के बिना सम्पूर्ण या आंशिक पुनर्प्रकाशन पूर्णतः प्रतिबंधित है।

वर्ष 31 अंक 08 फ़रवरी 2022

आपकी आशाओं का सुन्दर प्रतिबिम्ब

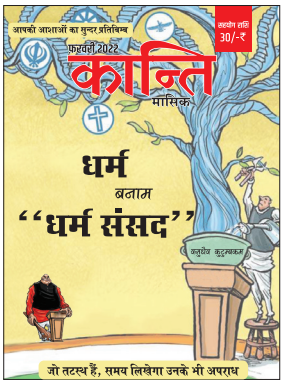

कान्ति मासिक

इस अंक में

मूल प्रश्न 04
धार्मिक विमर्श की आवश्यकता
शिब्ली अरसलान

चिंतन 07
क्यों आती हैं आपदाएं?
प्रो. मनजीत सिंह

सौंदर्य बोध 09
इन्सानी जान का सम्मान
एस० अमीनुल हसन

मुख्य स्तंभ 13
धर्म बनाम "धर्म संसद"
सुफ़ियान अहमद

विश्लेषण 17
हिंदू, हिंदू धर्म और हिंदुत्व
मुहम्मद जावेद इक़बाल

ज्वलंत 21
नफ़रत भरे बोल और हमारी ज़िम्मेदारियां
प्रो. सलीम इंजीनियर

अभिमत 23
नफ़रत नहीं, शांति
राम पुनियानी

इतिहास का सच और सच का इतिहास 25
इतिहास के साथ यह अन्याय!!
प्रो. विश्भरनाथ पाण्डेय

गीत 27
किसने शूल बो दिए?
मंज़र भोपाली

समाधान 29
सामाजिक विकास की व्यापक अवधारणा
सैयद सआदतुल्लाह हुसैनी

सद्भावना 33
मैं उसको ढूंढ़ रहा हूं!
डॉ० विपिन कुमार त्रिपाठी

विशेष 35
गांधी स्मृति: कितनी दूर-कितनी पास
सुभाष गाताडे

श्रद्धांजलि 39
एक महान मार्गदर्शक का जाना
नईम अलहिन्दी

स्मृति 41
गुमनाम शहीद
मुबीन अली अंसारी

फ़िल्म समीक्षा 45
'जय भीम': यथार्थ का आईना
उज़्मा सरवन

आख़िरी पन्ना 49
ईश्वर का इन्कार क्यों ?
डॉ. फ़रहत हुसैन

मूल प्रश्न



विघटन और सामूहिक उन्माद का सामान्यीकरण

धार्मिक विमर्श की आवश्यकता

क्या यह भारतीय समाज के विघटन, सामूहिक उन्माद और हिंसा के सामान्यीकरण का दौर है? धर्म संसद और बुल्ली बाई प्रकरण इसकी पराकाष्ठा है।

भारत जैसी गहरे धार्मिक-आध्यात्मिक धरती पर धर्म के नाम पर सभा आयोजित करके हिंदू बहुसंख्यक समाज से खुलेतौर पर देश के मुसलमानों के नरसंहार की अपील और ये अपील करने वाले कथित धर्म गुरु और धर्माचार्य! सामूहिक उन्माद और हिंसा के सामान्यीकरण का इससे अधिक बुरा उदाहरण और क्या होगा?

अंतर्राष्ट्रीय बोलचाल में 'रेडियो रवांडा' नरसंहार के आह्वान का पर्याय बन चुका है। यह अफ़्रीक़ी देश का एक रेडियो स्टेशन है, जिस पर बहुसंख्यक हेतु समुदाय से तुत्सी समुदाय के सफ़ाए की अपील की गई थी। जिसके परिणामस्वरूप 1994 में आठ लाख लोगों की सामूहिक हत्या कर दी गई। नरसंहार के लिए ऐसे ही आह्वान के बाद सर्ब्स द्वारा बोस्नियाक्स और क्रोट्स की सामूहिक हत्या की गई। हम उम्मीद करते हैं कि 'हरिद्वार' का पवित्र नाम नरसंहार के लिए उकसाने के मामले में 'रेडियो रवांडा' की जगह नहीं लेगा।

वैसे ही, बुल्ली बाई प्रकरण किसी भी सभ्य समाज के लिए नींद उड़ाने वाली घटना है। 18 साल की लड़की और 21 साल के इंजीनियरिंग स्टूडेंट का इस घटना में शामिल होना बताता है कि आग आम घरों तक पहुंच चुकी है, लेकिन समाज को विभाजित करने वाली बड़ी घटनाओं पर देश के पढ़े-लिखे मध्य वर्ग में स्वीकार्यता की हद तक चुप्पी है। अब ज़रा सोचिये बुल्ली बाई प्रकरण के बाद कोई विघटनकारी ऐसा एप्प बनाए जिसमें हिंदू महिलाओं की तस्वीरें हों और उनकी बोली लगाई जाए तो क्या होगा? क्या ये मान कर चुप बैठा जाए कि नफ़रत के पुजारियों के पास औरतों को अपमानित और प्रताड़ित करने के लिए उन्नत तकनीक आ गई है?

निश्चित ही नफ़रत के पुजारियों ने इस बात का जश्न मनाया होगा कि वे बीस-इक्कीस वर्ष की आयु के तीन हिन्दू युवकों तथा अठारह वर्षीय हिन्दू युवती में इतनी गहरी घृणा भर सके कि इन्होंने मुस्लिम महिलाओं की ऑनलाइन नीलामी के लिए बुल्ली बाई जैसा निंदनीय और निर्मम ऐप बनाया। इसे चर्चित करने के लिए नववर्ष के प्रथम दिवस का चयन किया गया जब लाखों देशवासियों की भांति यह मुस्लिम महिलाएं भी मूल्यों को बचाने, औरतों के हक़ की लड़ाई को नए जोश से आगे बढ़ाने तथा मुल्क में अमन-चैन और भाईचारे का माहौल स्थापित



शिब्ली अरसलान

करने के लिए संकल्पबद्ध हो रही थीं। इन मुस्लिम महिलाओं के मनोबल को तोड़ने के लिए बड़ी ही चतुर नृशंसता से नव वर्ष का चयन किया गया।

बुल्ली बाई ऐप के निर्माता मुस्लिम महिलाओं के अपमान तक ही सीमित नहीं रहे। उन्होंने झूठी सिख पहचान गढ़ी, ऐप की भाषा में पंजाबी को प्रधानता दी गई और पगड़ी को ऐप का लोगो बनाया गया। इसे ख़ालिस्तान समर्थक भी दिखाने की कोशिश हुई। इस तरह न केवल सिख समुदाय की छवि को धूमिल किया जा सकता था अपितु सिख तथा मुस्लिम समुदाय के मध्य शत्रुता भी उत्पन्न की जा सकती थी। इस वातावरण की पड़ताल और विश्लेषण करते हुए ज़ेहन बार-बार इस सवाल पर केंद्रित हो जाता है कि इसका हल क्या है? ज़हर जितने बड़े दायरे में घोला गया है और जिस गहराई तक उसका प्रभाव हुआ है, इससे इतना तो स्पष्ट है कि महज़ क़ानूनी कार्रवाई समाधान नहीं है। बड़े दायरे में गंभीर वैचारिक विमर्श की बड़ी ज़रूरत है। इन धर्म संसदों और बुल्ली एवं सुल्ली प्रकरणों ने मेरे इस विचार को प्रबल किया है कि करने के काम वास्तव में दो हैं–

(1) समाज में धर्म की आत्मा अर्थात् सच्ची धार्मिकता के लिए दीर्घकालिक काम... और (2) संसद की आत्मा यानी समाज के लोकतांत्रिकरण की सुनियोजित और मज़बूत कोशिश। धर्म का नाम लेकर मानव समाज के अंदर जो विघटनकारी शूल बो दिए गए हैं, इसका जवाब इसके अलावा और कुछ नहीं है कि धर्म की वास्तविक अवधारणा और सच्ची धार्मिकता का बड़े दायरे में योजनाबद्ध तरीक़े से प्रचार प्रसार हो। आधुनिक धर्मनिरपेक्ष बौद्धिक वर्ग धर्म के वास्तविक दर्शन को समझे बग़ैर इस ज़हरीली फ़िज़ा पर ज़बानी दुख का इज़हार तो करता रहता है, मगर भारतीय धार्मिक समाज को गहराई तक प्रभावित करने में नाकाम है। राजनीतिक सत्ता से उपकृत ऊर्जावान कुछ मुट्ठी भर तथाकथित धर्माचार्यों की ज़हरीली सोच से धर्म की व्याख्या नहीं हो सकती। प्रोपेगंडा और एजेंडा के इस दौर में धर्म को लेकर इतना धूल-धक्कड़ उड़ाया गया है कि धर्म की पहचान मुश्किल हो गई है। निस्संदेह धर्मों के बीच भिन्नताएं हैं, मगर जब आप धर्मों के बीच कॉमन बिन्दु तलाशेंगे तो आप सहज तौर पर इस नतीजे तक पहुचेंगे कि धर्मों की आत्मा एक है और वो दो बिंदुओं से युक्त है। (1) ईश भक्ति और (2) धरती के सारे जीवधारियों का एक परिवार होने की अवधारणा। इसे ही सनातनी परम्परा में 'वसुधैव कुटुंबकम्' कहा जाता है और इस्लामी शिक्षा में 'अल-ख़ल्क़ु अयालुल्लाह' कहते हैं। इससे हटकर जो भी है, वो अधर्म है, विशुद्ध चुनावीय तिकड़म है, 'धर्म रक्षा' के अनर्गल प्रलाप द्वारा कपटियों का धर्म की आत्मा को छलनी करना है। धार्मिक व्यक्ति ख़ुदापरस्त (ईश्वर-भक्त) होता है और ईश्वर की सच्ची भक्ति करने वाला इंसान पूरी मानव बिरादरी को ईश्वर का कुनबा समझता है। अपने ही कुनबे के विरुद्ध साज़िश और नफ़रत कैसी!! अतः संप्रदायवाद का धर्म से क्या संबंध...! इन नफ़रत व हिंसात्मक मानसिकता के पीछे धर्म नहीं, बल्कि धार्मिक प्रतीकों की आड़ में अपराधियों द्वारा छुपने-छुपाने का खेल चल रहा है। इसलिए आज सच्चे धार्मिक लोगों को आगे आकर सच्ची धार्मिकता का पूरे ज़ोर-शोर से प्रचार व प्रसार करना होगा।

इन धर्म संसदों और बुल्ली एवं सुल्ली प्रकरणों ने मेरे इस विचार को प्रबल किया है कि करने के काम वास्तव में दो हैं- (1) समाज में धर्म की आत्मा अर्थात् सच्ची धार्मिकता के लिए दीर्घकालिक काम... और (2) संसद की आत्मा यानी समाज के लोकतांत्रिकरण की सुनियोजित और मज़बूत कोशिश। धर्म का नाम लेकर मानव समाज के अंदर जो विघटनकारी शूल बो दिए गए हैं, इसका जवाब इसके अलावा और कुछ नहीं है कि धर्म की वास्तविक अवधारणा और सच्ची धार्मिकता का बड़े दायरे में योजनाबद्ध तरीक़े से प्रचार प्रसार हो। आधुनिक धर्मनिरपेक्ष बौद्धिक वर्ग धर्म के वास्तविक दर्शन को समझे बग़ैर इस ज़हरीली फ़िज़ा पर ज़बानी दुख का इज़हार तो करता रहता है, मगर भारतीय धार्मिक समाज को गहराई तक प्रभावित करने में नाकाम है। राजनीतिक सत्ता से उपकृत ऊर्जावान कुछ मुट्ठी भर तथाकथित धर्माचार्यों की ज़हरीली सोच से धर्म की व्याख्या नहीं हो सकती।

“ऐ आदम की संतान, इबादत के प्रत्येक अवसर पर अपनी शोभा धारण करो; खाओ और पियो, परन्तु हद से आगे न बढ़ो। निश्चय ही वह हद से आगे बढ़ने वालों को पसन्द नहीं करता।
(कुरआन, 7:31)”

CHHOTA NAGPUR TRADERS

चिंतन



प्रो. मनजीत सिंह

क्यों आती हैं आपदाएं

वर्तमान समय में दुनिया भर में मानवजाति कोरोना जैसी महामारी का दंश झेल रही है। पूरे मानव समाज को इसने भयभीत कर रखा है। जब भी कोई आपदा या मुसीबत आती है, चाहे वह सामाजिक रोगों के रूप में हो, सामाजिक समस्याओं या प्राकृतिक आपदाओं के रूप में हो, निसंदेह हम लोग चिंतित हो जाते हैं, लेकिन चिंतित होने से उसका हल सामने नहीं आता। चिंतित होने के बजाय यदि हम चैतन्य होना शुरू कर दें तो चिंता के निराकरण की सम्भावना बन जाती है।

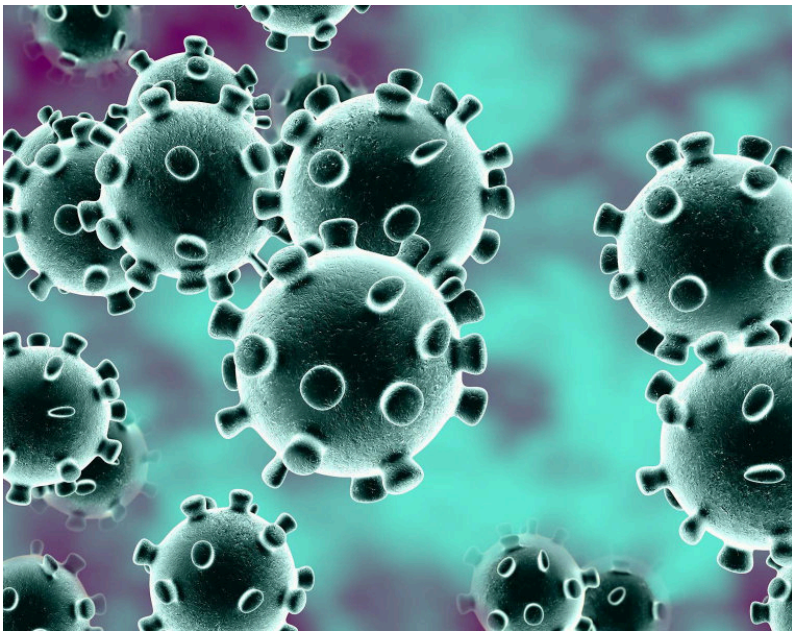

जीवन चिंतारहित हो जाए और आनंदमय बन जाए, इसके लिए पैग़म्बरों और धर्मगुरुओं ने समय-समय पर हमें ज्ञान की बातें बताई हैं। आपदाएं क्यों आती हैं? जीवन में क्यों हम शारीरिक या मानसिक रूप से रोगों के शिकार हो जाते हैं? क्यों सामाजिक या पारिवारिक झगड़े और क्लेश हमें दुखी करने के लिए बन जाते हैं? हम क्यों अपने आपके साथ दिन भर में पांच-सात मिनट बिताना भी भूल गए हैं। ज्ञानी एवं महापुरुषों ने हमें बताया है कि, हमने चिंता करना तो सीख लिया, लेकिन चिंतन करना भूल गए और वह चिंतन भी हमें आत्मचिंतन के रूप में करना था।

इस संबंध में सबसे पहली और ज़रूरी बात यह है कि जीवन में जब तक संयम न हो, चाहे वह अपने विचारों पर हो या अपने कार्यों एवं व्यवहारों पर। यदि जीवन में किसी भी बात में संयम न हो तो आपदा आएगी। मिसाल के तौर हमारे शरीर को तृप्ति और ऊर्जा देने के लिए भोजन की आवश्यकता होती






है, लेकिन यदि इसे ग्रहण करने में हमने संयम से काम नहीं लिया और केवल स्वाद हमारे ऊपर हावी हो गया तो वह भोजन हमारे लिए बीमारियों का कारण बनेगा।

इसी प्रकार विचारों की ख़ुराक भी है, जो हमारी आत्मा, रूह और मन को संतुष्टि देती है। यदि हमारे विचारों में संयम नहीं है तो हम मानसिक रोगी होंगे। बताया जाता है कि यह कोरोना वायरस मनुष्य द्वारा निर्मित किया गया है। सवाल उठता है कि इसके पीछे कौन-सी सोच कार्य कर रही होगी? इसके पीछे कहीं न कहीं किसी मनुष्य के भीतर अनैतिक व्यवहार, स्वार्थ, अहं, दूसरों को दुख और पीड़ा पहुंचाने तथा अपमानित करने वाली सोच काम कर रही होगी। चाहे वह किसी भी देश में बैठा हो और कोई भी हो, चाहे वह कोई राजनीतिज्ञ हो या अन्य किसी भी क्षेत्र में काम कर रहा हो। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि जीवन में संयम नहीं है तो बहुत-सी आपदाएं आने की संभावनाएं बन जाती हैं। दूसरी बात है संतोष। जीवन में हमने जो कुछ भी आर्थिक रूप से कमाया है, यदि उसमें संतोष नहीं है, तृप्ति नहीं है तो वह तृष्णा बनेगी और इस तृष्णा से स्वार्थ एवं ईर्ष्या का जन्म होगा। हमारा अहं बार-बार हमको दूसरों से अनैतिक ढंग से आगे निकलने के लिए तंग करेगा और यह स्वार्थ, अहं और तृष्णा दूसरों को तो पीड़ा पहुंचाएगी ही साथ ही इसका पीड़ादायी प्रभाव हमारे जीवन पर भी पड़ेगा।

तीसरी बात सेवा है। हमारे द्वारा जीवन में प्राप्त की गई कोई भी उपलब्धि चाहे वह भौतिक हो, आध्यात्मिक हो या किसी भी रूप में हमने जो कुछ भी कमाया है, यदि हमारे मन में इसे दूसरों के साथ दूसरों की भलाई के लिए बांट लेने का विचार है तो ये आपदाएं हमें चिंतित नहीं कर पाएंगी। जीवन में परोपकारी बनकर यदि हम समय गुज़ारना सीख लें तो समय केवल गुज़रेगा नहीं, बल्कि समय सफल हो जाएगा। जीवन चिंतामय नहीं रहेगा बल्कि आनंदमय हो जाएगा।

आज पूरे विश्व में धार्मिक प्रकृति के विद्वान और नैतिक व आध्यात्मिक चेतना वाले जो लोग हैं वे इसी बात को लेकर विचार-विमर्श कर रहे हैं कि कैसे दुनिया भर में आई इस आपदा को मानव जीवन पर मानसिक रूप से हावी होने से रोका जाए। निष्कर्ष रूप से संक्षेप में जानकारों की राय यह है कि हमारा जीवन अनुशासनहीन हो गया है। जीवन में संयम नहीं रहा, वे चाहे हमारे कार्य या व्यवहार हों या फिर हमारे विचार हों। जीवन में संतोष नहीं रहा, दूसरों से आगे निकल जाने की सोच ने हमारे ऊपर अनैतिक प्रभाव डाला और हम असंयमित एवं अनैतिक हो गए, जबकि सेवा तो संयम और नैतिकता से ही निकलनी थी।

ईश्वर से प्रार्थना है कि कृपा हो ताकि हम जीवन में संयमी एवं संतोषी बन सकें और दूसरों की भलाई के लिए तत्पर हो सकें। हम अपने महापुरुषों की दी गई शिक्षाओं को जीवन में अमली रूप देकर ऐसे समाज के निर्माण का प्रयास करें जिसमें ऐसी आपदाएं किसी न किसी रूप में यदि आ भी जाएं तो हम सभी मिलकर उसका सामना कर सकें। हमारा समाज इतना सशक्त बन जाए कि ऐसी आपदाएं हमें व्याकुल न कर सकें और हम विचलित न होने पाएं। ■■

सौंदर्य बोध



एस. अमीनुल हसन

इन्सानी जान का सम्मान

कुछ महीने पहले देश के एक प्रतिष्ठित अंग्रेज़ी दैनिक अख़बार 'द हिंदू' में एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई कि हमारे देश की राजधानी दिल्ली में हर वर्ष लगभग 450 हत्याएं होती हैं। इनमें से लगभग 20 प्रतिशत हत्याएं सड़कों पर छोटी-छोटी बातों पर उग्र होने के कारण हिंसक हो जाने के परिणामस्वरूप होती हैं। किसी रिक्शे वाले ने जगह नहीं दी, पार्किंग के दौरान विवाद हो गया, छोटी गाड़ी बड़ी गाड़ी से टकरा गई। इस तरह की छोटी-छोटी घटनाओं पर लोग उग्र हो जाते हैं और फ़ौरन हमला कर देते हैं, जिसके नतीजे में राजधानी दिल्ली में प्रतिवर्ष 70 से 80 लोगों की हत्या हो जाती है।



अभी कुछ दिनों पहले हमने देखा कि पाकिस्तान के सियालकोट में एक फैक्ट्री के कर्मचारी जोकि श्रीलंका का था, उस ग़ैर-मुस्लिम पर यह आरोप था कि उसने मुहम्मद (सल्ल.) के बारे में कुछ अपमानजनक बातें कहीं। यदि ऐसा कुछ था भी तो क़ानून को अपना काम करना चाहिए था। लोगों को क़ानून अपने हाथ में लेने का कोई अधिकार इस्लाम नहीं देता, लेकिन जिस क्रूरता के साथ लात, घूसों और डंडों से उसे पीट-पीट कर मार दिया गया वह मुहम्मद (सल्ल.) की शिक्षाओं के बिल्कुल विपरीत है। लानत है ऐसे लोगों पर जिन लोगों ने इस घटना को अंजाम दिया। इस्लाम इस बात की अनुमति नहीं देता की जनता अपने हाथों से किसी की हत्या कर दे। यह सरासर इस्लामी शिक्षाओं के ख़िलाफ़ है।

इसी प्रकार अभी कुछ दिनों पहले हमने नागालैंड में देखा कि मिलिट्री ने किस तरह से गोलियां बरसाईं जिसके नतीजे में चौदह निहत्थे आम नागरिक

मारे गए। मिलिट्री को यह अधिकार नहीं है कि वह आम जनता पर गोली चलाए। अफ़सोस की बात यह है कि इन मौतों पर ईसाई समुदाय के एक पादरी की से ओर एक बयान आया और मुसलमानों की ओर से एक दो संगठनों की ओर से बयान आया, वरना किसी ने इसकी निंदा नहीं की। क्या इन्सानी जान इतनी सस्ती है? इन्सानी जान के सम्मान को रौंदा जा रहा है और हाल यह है कि लगभग सभी समुदाय के लोग बेहिसी के शिकार हैं। किसी के दिल में दर्द नहीं उठता। बहुत ही कम ऐसे अच्छे लोग होंगे जो कहीं फेसबुक की वाल पर कुछ लिख देते हैं, वरना बेहिसी का हाल यह है कि जब लोगों की हत्याएं हो जाती हैं तो सन्नाटा छाया हुआ होता है।

वर्ष 2019 में बंगलादेश में कॉलेज के एक छात्र ने अपनी सरकार की ग़लत नीति पर अपनी फेसबुक की वाल पर कुछ लिखा। इसके बाद पच्चीस लड़कों ने मिलकर हॉकी और डंडों से उसे इतना मारा कि उसकी मौत हो गई। अभी हाल में ही यह ख़बर आई है कि वहां की अदालत ने पच्चीस में से पांच लोगों को उम्रक़ैद की सज़ा सुनाई और बीस लोगों को मौत की सज़ा सुनाई गई। यह बहुत ही संतोषजनक पहलू है।

इस्लामी शिक्षाओं में यह बात बताई गई है कि हत्या एक बहुत ही बड़ा अपराध है। क़ुरआन में कहा गया है-''जिसने किसी इन्सान को क़त्ल के बदले या ज़मीन में बिगाड़ फैलाने के सिवा किसी और वजह से क़त्ल कर डाला उसने मानो सारे ही इन्सानों को क़त्ल कर दिया।'' (क़ुरआन, 5:32)

इन्सानी जान के सम्मान को रौंदा नहीं जाना चाहिए। यह समाज और सरकार की ज़िम्मेदारी है कि यदि ऐसा हो तो उस रास्ते को बंद किया जाए। यह सरकार की ज़िम्मेदारी है कि वह न्यायिक प्रक्रिया के ज़रिये हत्यारे का पता लगाए और जुर्म साबित होने पर उसे दंडित करे। हर दौर में सरकारों की यह ज़िम्मेदारी रही है और हमारा काम बनता है कि हम सरकार को यह याद दिलाते रहें। क़ुरआन हमें बताता है कि यह सारे इन्सानों की ज़िम्मेदारी है कि यदि कोई



हत्या होती है तो पीड़ित परिवार के लोगों की मदद होनी चाहिए और हत्या के गंभीर रास्ते को रोका जाना चाहिए। यह एक बहुत बड़ा जुर्म है। क़ुरआन ने हमें बताया–

''ऐ लोगो जो ईमान लाए हो, तुम्हारे लिए क़त्ल के मुक़द्दमों में क़िसास (बदले) का आदेश लिख दिया गया है। आज़ाद आदमी ने क़त्ल किया तो उस आज़ाद आदमी से ही बदला लिया जाए, ग़ुलाम क़ातिल हो तो वह ग़ुलाम ही क़त्ल किया जाए, और औरत ने यह अपराध किया हो तो उस औरत से ही क़िसास लिया जाए। हां, अगर किसी क़ातिल के साथ उसका भाई कुछ नरमी करने के लिए तैयार हो, तो सामान्य नियम के अनुसार ख़ून के माली बदले का निपटारा होना चाहिए और क़ातिल के लिए आवश्यक है कि भले तरीक़े से ख़ूनबहा चुका दे। यह तुम्हारे रब की ओर से छूट और दयालुता है। इस पर भी जो ज़्यादती करे उसके लिए दर्दनाक सज़ा है। अक़्ल और समझवालो, तुम्हारे लिए क़िसास में ज़िन्दगी है। उम्मीद है कि तुम इस क़ानून के उल्लघंन से बचोगे।''

(क़ुरआन, 2:178-179)

क़ुरआन के इस दंड विधान में जीवन है। इस्लामी क़ानून में यह बात है कि यदि किसी ने क़त्ल किया या समाज में फ़साद बरपा किया तो क़ानूनी प्रक्रिया के तहत उसको दंड दिया जाएगा। कुछ देशों में ड्रग पेडलर (मादक पदार्थों का व्यापार करने वाले) को मौत की सज़ा का क़ानून है। यह क़ानून निर्माण का मामला है। बात दरअस्ल, यह है कि क़ातिल को सज़ा दी जाए और इस सज़ा में अतिवाद से बचना चाहिए। जितनी ख़ता उतनी सज़ा दी जाए। जिस आदमी ने क़त्ल किया केवल उसे ही दंड दिया जाएगा। उसके पूरे परिवार या समाज को इस दंड का भागी नहीं बनाया जाएगा। क़ुरआन ने कहा कि पीड़ित परिवार की मदद ज़रूर की जानी चाहिए।

इस्लाम में क़िसास (बदले) का जो क़ानून है वह तर्क व बुद्धि पर आधारित है। अक़्ल से जब आदमी ग़ौर करके देखेगा तो पता चलेगा कि जिस बंदे ने



एक का क़त्ल किया, उसने एक क़ानून का क़त्ल किया। उसने एक क़ानून का ख़ून बहाया। जब उस क़ानून का प्रभाव और उस क़ानून का डर ख़त्म होता है तो उसके नतीजे में दूसरा क़त्ल आसान हो जाता है। दूसरा क़त्ल हुआ तो तीसरा क़त्ल आसान होता है और तीसरा हुआ तो चौथा क़त्ल आसान होता है। यह काम सरकार का है कि न्यायिक प्रक्रिया के तहत क़ातिल का पता लगाए और जुर्म साबित होने के बाद उसे सज़ा दे।

बाइबल और तौरात में भी यह कहा गया है कि–'तुम हत्या नहीं करोगे।' अल्लाह तआला ने जो दस निर्देशों का शिलालेख हज़रत मूसा (अलैहि.) को दिया था, उसमें से एक क़ानून यह भी था कि कोई किसी का क़त्ल नहीं करेगा। ''जिसने किसी एक व्यक्ति का भी क़त्ल किया, उसे मौत के घाट उतार दिया जाएगा।'' यह तौरात की शिक्षा है। हिंदू, बौद्ध और जैन धर्म की शिक्षाओं में भी हत्या को एक बड़ा पाप एवं अपराध माना गया है, लेकिन हम देखते हैं कि इस क्रूरतापूर्ण अपराध में सभी शामिल हैं। कोई हिंदू, मुसलमान या किसी भी धर्म को मानने वाला यदि अपने धर्म की शिक्षाओं पर अमल नहीं करता है तो फिर वह इन्सानियत की सतह से नीचे गिरकर दरिंदा बन जाता है।

इसके कारणों पर यदि विचार किया जाए तो हम देखते हैं कि आज दुनिया भर में नफ़रत की सियासत परवान चढ़ रही है। सबसे पहली बात यह है कि सियासी लोग नफ़रत एवं पक्षपात की सियासत खेलते हैं, जिसके नतीजे में लोगों को एक दूसरे के ख़िलाफ़ भड़काया जाता है और क़त्ल करना आसान हो जाता है। दूसरी बात यह है कि धार्मिक नताओं का यह काम था कि लोगों को शराफ़त और इन्सानियत सिखाते। लोगों को धैर्य और इन्सानी जान का सम्मान करना सिखाते। सभी धर्म के धार्मिक नेताओं की यह ज़िम्मेदारी बनती है कि अपनी धार्मिक शिक्षाओं के हवाले से लोगों को एक दूसरे की जान और माल का सम्मान करना सिखाते, लेकिन धार्मिक तबक़े यदि ख़ुद पक्षपात की आग को भड़काना शुरू कर दें तो फिर उस आग में देर या सबेर सब जलकर रहेंगे।

तीसरे नम्बर पर आती है हमारी फ़िल्मों की दुनियां। गत तीस-चालीस वर्षों की फ़िल्मों में आप देखिए कि फ़िल्म का जो हीरो होता है, किसी ने ज़रा भी उसका विरोध किया तो बड़ी आसानी के साथ आनन-फ़ानन में वह दसियों लाशें बिछा देता है और कोई उस पर चर्चा भी नहीं करता। इस संबंध में कुछ रिसर्च पेपर मौजूद हैं। यह एक गंभीर मामला है कि हमारी फ़िल्म इंडस्ट्री पर किसी ने ध्यान नहीं दिया और इसके जो प्रभाव हमारी युवा पीढ़ी पर पड़ रहे हैं उसे गंभीरता से नहीं लिया गया। फ़िल्मी पर्दे पर ही सही, हिंसा व मारकाट को जिस तरह से दिखाया जाता है उससे यह संदेश आम होता है कि इन्सानी जान सस्ती है।

इस दिशा में काम करने की ज़रूरत है। पढ़ने-लिखने और रिसर्च करने वाले जो लोग हैं उनकी यह ज़िम्मेदारी भी बनती है कि वे हमारी फ़िल्मों की समीक्षा करके यह बताएं कि इसके नतीजे में हिंसा को किस प्रकार से

बाइबल और तौरात में भी यह कहा गया है कि- 'तुम हत्या नहीं करोगे।' अल्लाह तआला ने जो दस निर्देशों का शिलालेख हज़रत मूसा (अलैहि.) को दिया था, उसमें से एक क़ानून यह भी था कि कोई किसी का क़त्ल नहीं करेगा। "जिसने किसी एक व्यक्ति का भी क़त्ल किया, उसे मौत के घाट उतार दिया जाएगा।" यह तौरात की शिक्षा है। हिंदू, बौद्ध और जैन धर्म की शिक्षाओं में भी हत्या को एक बड़ा पाप एवं अपराध माना गया है, लेकिन हम देखते हैं कि इस क्रूरतापूर्ण अपराध में सभी शामिल हैं। कोई हिंदू, मुसलमान या किसी भी धर्म को मानने वाला यदि अपने धर्म की शिक्षाओं पर अमल नहीं करता है तो फिर वह इन्सानियत की सतह से नीचे गिरकर दरिंदा बन जाता है।

बढ़ावा मिलता है और इसे कैसे रोका जाना चाहिए? इसे रोकने के लिए किस प्रकार के क़ानूनों की ज़रूरत है यह देखना भी हर ज़िम्मेदार नागरिक का कर्तव्य है। चौथी और महत्वपूर्ण बात यह है कि घरों में हमारे बच्चे जो वीडियो गेम खेलते हैं, उनमें में भी हिंसा होती है। बच्चों को बड़ा शौक़ होता है कि आधे घंटे के खेल में ज़्यादा से ज़्यादा लाशों को बिछा दिया जाए, सारा स्कोर स्क्रीन पर आता रहता है।

पांचवीं और अंतिम बात यह है कि ख़ुद हमारे घरों की शिक्षाएं ख़राब हो गई हैं। घरों में यह नहीं सिखाया जाता है कि मतभेदों को सहन करना चाहिए। किसी को घृणा की नज़र से नहीं देखा जाना चाहिए। धर्म या किसी अन्य आधार पर हम किसी के साथ पक्षपातपूर्ण रवैया नहीं अपना सकते। हर इन्सान के साथ सम्मानजनक व्यवहार किया जाना चाहिए। धर्म के आधार पर किसी के साथ भेदभाव नहीं करना चाहिए। घरों में इस प्रकार की शिक्षाएं ख़त्म हो चुकी हैं। ऐसा भी होता है कि जब हमारा बच्चा नहाता नहीं या कोई और गड़बड़ करता है तो हम किसी अन्य जाति या समुदाय के लोगों से उसकी तुलना करने लगते हैं।

मेरे एक मित्र ने मुझे एक सच्ची घटना सुनाई कि एक ईसाई व्यापारी अपने एक मुस्लिम साझीदार की रक़म नहीं दे रहा था। मुस्लिम व्यापारी पादरी के पास गया और शिकायत की तो पादरी ने एक चिट्ठी लिखकर दी और उससे कहा कि यह चिट्ठी ले जाकर उसे दे दो। उसने वह चिट्ठी ले जाकर ईसाई व्यापारी को दी। ईसाई व्यापारी ने चिट्ठी ली और खोलकर उसे पढ़ा। इसके बाद वह फ़ौरन घर के अंदर गया और विवादित रक़म को लाकर लौटा दिया। कुछ दिनों के बाद मुस्लिम व्यापारी ने उससे पूछा कि क्या हुआ और तुमने क्यों इतनी आसानी से रक़म को लौटा दिया तो उसने कहा कि हमारे पादरी ने लिखा था कि 'तुम कब से मुसलमान हो गए कि लोगों के पैसे दबाकर बैठ जाते हो।'

होता यह है कि घरों के अंदर हमारी शिक्षा यह है कि हम अपने बच्चों में दूसरे धर्मों और समुदायों के लोगों बारे ग़लत बातें बिठा देते हैं और बड़े होने के बाद दूसरे धर्मों के लोगों से जब उनका पाला पड़ता है तो ग़ुस्सा भड़क उठता है। यह सब हमारे घरों की शिक्षाओं की ख़राबियां हैं। इसे सुधारने और इस दिशा में काम करने की ज़रूरत है। घरों के माहौल और बच्चों की शिक्षाओं को दुरुस्त करने की ज़रूरत है। ज़रूरत इस बात की भी है कि हम अपनी शिक्षा व्यवस्था में नैतिकता और मानवता को लाएं।

एक इन्सान को केवल इन्सान की हैसियत से देखा जाना चाहिए। इन्सानों से व्यवहार करते समय हमें यह नहीं देखना चाहिए कि उसका धर्म, जाति, रंग, नस्ल या समुदाय क्या है। यह देखना ख़ुदा का काम है कि उसका धर्म क्या है। हर जान और हर व्यक्ति सम्माननीय है, चाहे वह किसी भी धर्म से संबंध रखता हो। जैसा कि ऊपर मैंने बंगलादेश के अदालती फ़ैसले के बारे में उल्लेख किया, यदि इस तरह के दो चार फ़ैसल हमारे देश में भी हो जाएं, जिसमें हर प्रकार के क़ातिलों को सज़ा दी जाए तो हम देखेंगे कि इस देश की सूरतेहाल भी बदलेगी और इन्सानी जान का सम्मान बाक़ी रहेगा। हमें इसकी संवेदशीलता को समझना होगा। इन्सानी जान के सम्मान के सिलसिले में हमें जो कुछ भी लिखने, बोलने और अमल करने की ज़रूरत है वह किया जाना चाहिए।

■■

मुख्य स्तम्भ



सुफ़ियान अहमद

धर्म बनाम "धर्म संसद"

जो तटस्थ हैं, समय लिखेगा उनके भी अपराध



अयंनिज: परोवेतिगणनालघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।

यह मेरा है अथवा पराया है ऐसा केवल छोटे दिल वाले ही सोचते हैं। उदार दिल वालों के लिए तो सारी पृथ्वी ही एक परिवार की तरह है। संकीर्ण मानसिकता वाले लोग ही अपने पराये में भेद रखतें हैं। उदार मानसिकता वाले लोग तो सबको अपना ही समझते हैं। ऊंच, नीच, तेरा, मेरा ऐसी भावना उनके चित्त में नहीं आती।

वसुधैव कुटुम्बकम की यह भारतीय अवधारणा एक सामाजिक आध्यात्मिक दर्शन है, वसुधैव कुटुम्बकम की यह सोच हमें बताती है कि पूरी दुनिया एक परिवार है और समस्त मानवजाति एक ही परिवार का हिस्सा है।

संसार के सभी धर्मों में दो मूल तत्व प्रमुखता से पाए जाते हैं, पहला है ईश भक्ति और दूसरा है-धरती के सारे इन्सान एक ही माता पिता की संताने हैं। ईशग्रंथ क़ुरआन हमें बताता है–

''लोगो, अपने रब से डरो जिसने तुमको एक जान से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा बनाया और उन दोनों से बहुत से मर्द और औरत दुनिया में फैला दिए।'' (क़ुरआन, 4:1)

एक अन्य स्थान पर कहा गया है–

''लोगों, हमने तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया और फिर तुम्हारी क़ौमें और बिरादरियां बना दीं ताकि तुम एक दूसरे को पहचानो।''

(क़ुरआन,49:13)

हदीस में आता है कि, ''ऐ लोगो! यह जान लो कि तुम्हारा रब (पालनहार) एक है, और तुम्हारे पिता (आदम) एक हैं।'' यदि हम सब एक ही माता पिता की संतान हैं और हम सबको पैदा करने वाला ईश्वर एक ही है तो इस तरह हम सब भी एक ही परिवार के सदस्य हैं, फिर चाहे हम किसी जाति धर्म या नस्ल से क्यों न संबंध रखते हों। जो कोई आस्था के नाम पर हिंसा करता है, वह अपने ही धर्म का दुश्मन है। सनातन धर्म की शिक्षाओं के अनुसार भी सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं।

कोई भी धर्म और किसी भी धर्म-ग्रंथ का कोई भी अंश किसी को यह अनुमति नहीं देता कि किसी दूसरे धर्म के मानने वालों का उत्पीड़न किया जाए। उन्हें डराया धमकाया जाए या उनके ख़िलाफ़ बयानबाज़ियां की जाएं।

जहां तक हिंदू या सनातन धर्म की बात है तो उसका दावा है कि वह विश्व बंधुत्व का उद्घोष करता है और वसुधैव कुटुम्बकम के सूत्र को आत्मसात करने वाला धर्म है, लेकिन सवाल यह पैदा होता है कि हरिद्वार और रायपुर जैसी तथाकथित धर्म संसदों में उपस्थित होकर नफ़रत एवं नरसंहार की बात करने और धर्माचार्य और साधू संत कहलाने वाले लोग किस धर्म के



अनुयायी थे? सवाल यह भी पैदा होता है कि जो लोग ऐसी धर्म संसदों में धर्म के नाम पर लोगों को इकट्ठा कर ऐसी बातें करते हैं, क्या उन्हें धर्माचार्य कहा जाना चाहिए? क्या कोई धर्माचार्य किसी अन्य धर्म के लोगों के ख़िलाफ़ इस प्रकार की भाषा बोलता है? धर्म और क़ानून के विरुद्ध इन तथाकथित धर्म संसदों के आयोजन की नीति और नियत दोनों स्पष्ट है। चंद लोग जो केवल वस्त्र धारण कर लेते हैं और एक ख़ास राजनीतिक उद्देश्य के तहत किसी एक धर्म को निशाना बनाते हैं।

नफ़रत और नरसंहार किसी धर्म का विषय नहीं हो सकता। इसलिए ऐसे आयोजनों को धर्म संसद का नाम नहीं दिया जा सकता। धर्म के नाम पर इस प्रकार की कट्टरता अलगाववाद को जन्म देती है और यही अलगाववाद एक दिन आतंकवाद बन जाता है। ऐसे आयोजनों से कोई राजनीतिक दल तो ताक़तवर हो सकता है, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि ऐसी कट्टरता से यह देश कमज़ोर हो रहा है। इन तथाकथित धर्म संसदों से आने वाले वक्तव्य न तो धर्मसम्मत हैं और न ही इन्हें संसदीय मर्यादा के अनुकूल ही कहा जा सकता है। ऐसा करने वाले भूल जाते हैं कि देश के आम लोगों और साधू संतों में बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो इस भाषा को स्वीकार नहीं कर सकते। हिंदू धर्म में आस्था रखने वाले भी बड़ी संख्या में है जो ऐसी सोच के विरुद्ध हैं। सच्चे धर्माचार्य तो वसुधैव कुटुम्बकम की अवधारण में विश्वास रखते हैं।

धर्म समाज में घृणा और हिंसा का मूल कारण नहीं है, क्योंकि सभी धर्म घृणा, उत्पीड़न और हिंसा के ख़िलाफ़ शिक्षा देते हैं। आज वसुधैव कुटुम्बकम् की विरासत वाली इस भारत भूमि पर वर्चस्ववादी मानसिकता



और राजनीतिक लाभ के लिए धर्म का दुरुपयोग किया जा रहा है। दुनिया में हर समय में और हर जगह, पैग़म्बर और ईशदूत ईश्वर के संदेश के साथ पृथ्वी पर शांति और न्याय स्थापित करने के लिए आए। किसी भी धर्म का उपयोग हिंसा और अत्याचार करने के लिए नहीं किया जाना चाहिए। अगर हमारे दिल में दूसरों के लिए प्रेम, दया और नम्रता है, तो हमारे बीच आपसी दुश्मनी और नफ़रत पैदा नहीं हो सकती है।

भारत जैसे महान, बहुधर्मी देश में सदा से ही सहअस्तित्व की भावना से लोग एक-दूसरे के साथ रह रहे हैं। क्षमा, दया, तप, त्याग और बलिदान जैसी विशेषताओं का पाठ पढ़ाने वाले इस भारतीय दर्शन को, लगता है कुछ धुर इस्लाम विरोधी विचारधारा रखने वालों ने संभवतः किसी बड़ी साज़िश के तहत अपहरण कर लिया है। अन्यथा गत कुछ वर्षों से जिस प्रकार धर्म के नाम पर नफ़रत एवं विद्वेष की आंधी चल रही है ऐसी आंधी पहले कभी नहीं देखी गई।

असहिष्णुता तथा कट्टरता का ऐसा प्रदर्शन कि खुलेआम मरने और मारने

हरिद्वार, रायपुर और दिल्ली जैसी धर्म संसदों को धर्म संसद का नाम देना भी अपराध की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। इन कथित धर्म संसदों में सुनाई देने वाले बयानों की केवल निंदा या भर्त्सना ही पर्याप्त नहीं, यह भी सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि माहौल बिगाड़ने और वैमनस्य पैदा करने वाले ऐसे आयोजन न होने पाएं।

की बातें की जा रही हैं। हरिद्वार, रायपुर और दिल्ली जैसी धर्म संसदों को धर्म संसद का नाम देना भी अपराध की श्रेणी में रखा जाना चाहिए। इन कथित धर्म संसदों में सुनाई देने वाले बयानों की केवल निंदा या भर्त्सना ही पर्याप्त नहीं, यह भी सुनिश्चित किया जाना आवश्यक है कि माहौल बिगाड़ने और वैमनस्य पैदा करने वाले ऐसे आयोजन न होने पाएं। ऐसे आयोजनों में ज़हर उगलने वाले लोग तो अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के हिसाब से काम कर रहे हैं, लेकिन अस्ल दोषी तो वे हैं, जिन्होंने उन्हें यह मौक़ा उपलब्ध कराया।

दुर्भाग्य से ऐसे आयोजनों के अगुवा ख़ुद को संत-साध्वी कहने वाले लोग हैं, जैसे कि संत धर्मदास, साध्वी अन्नपूर्णा और संत कालीचरण। सरकारी मशीनरी की पहरेदारी में इन कथित धर्म संसदों के कुंड से निकलने वाली नफ़रत की आग को बुझाना आवश्यक है। धर्म की आड़ में उन्माद और उत्पीड़न को रोकना ही होगा। इसके लिए सनातनी परंपरा के सच्चे धर्माचार्यों को आगे आना होगा। आज हमें फिर से अपने पारंपरिक उदारवाद की ओर लौटने की बहुत ज़रूरत है। हमें धार्मिक पाखंड को तोड़कर इंसानियत की पैरवी करनी होगी। कोई भी धर्म या मज़हबी ग्रंथ हमें क़ानून हाथ में लेकर हत्या करना नहीं सिखाता बल्कि हर धर्म दूसरे धर्म को क्षमावादी विचारधारा का पाठ सिखाता है। संकीर्णता, कट्टरता, नफ़रत और हिंसा नहीं, बल्कि शांति एवं सद्भाव से ही एक बेहतर देश और एक बेहतर समाज का निर्माण हो सकता है। ■■

Bengal Footwear Co





39, Rabindra Sarani, Near Bank Of Baroda,
Chittaranjan Avenue, Kolkata - 700073
Phone: 033-22344220, 22216446, 9433012049



हिंदू, हिंदू धर्म और हिंदुत्व

विश्लेषण



मुहम्मद जावेद
इक़बाल

हिंद, हिंदू धर्म और हिंदुत्व की अवधारणा आम लोगों के मन में पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है। मौजूदा समय में, हिंदू शब्द का अभिप्राय हर उस व्यक्ति से है जिसका संबंध हिंदू धर्म से है। हिंदू शब्द हिंद से लिया गया है जिसका प्रयोग कई अर्थों में किया जाता है। ऑनलाइन अरबी पोर्टल में इसका अर्थ उत्कृष्ट, सुंदर और तेज के दर्ज हैं। यह शब्द फ़ारसी शब्दकोश में भी दर्ज है, जिसका अर्थ आकर्षक और प्रिय होता है। ईरान और भारत में, शीरीं और लैला शब्द का प्रयोग महबूबा के लिए किया जाता है। इसी तरह इस शब्द का प्रयोग अरबी भाषा में भी इसी अर्थ में होता है। अबू सुफ़ियान की पत्नी का नाम हिन्द था। इसी प्रकार अन्य महिलाओं के नाम में 'हिन्द' का प्रयोग हुआ है। हिंद शब्द का अर्थ काला भी होता है। फ़ारसी शब्दकोश में इस शब्द का अर्थ चोर, लुटेरा, और हारने वाला दर्ज है। हो सकता है कि सिंधु नदी के पास कुछ ऐसे लोग रहते रहे हों जिनका पेशा यात्रियों को लूटना रहा हो, इसलिए ईरानियों ने उनका नाम हिंदू रख दिया हो। पूरे भारत के लोगों को लूटेरा कहना इतिहास और साहित्य के साथ सरासर नाइंसाफ़ी होगी।

प्राचीन धार्मिक पुस्तकों में हिंदू शब्द नहीं पाया जाता। रामधारी सिंह दिनकर जो कि एक इतिहासकार, कवि और भागलपुर विश्वविद्यालय के कुलपति थे, उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' जिसे आज भी सनद के तौर पर जाना जाता है, इसका परिचय हमारे पहले प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कराया था। लेखक अपनी इस पुस्तक के पृष्ठ104 पर लिखता है कि प्राचीन धार्मिक पुस्तकों संस्कृत या पाली भाषा में यह शब्द नहीं पाया जाता, लेकिन जो लोग बाहर से आए उन्होंने यहां रहने वाले लोगों को हिंदू कहना शुरू

प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर के अनुसार, पंद्रहवीं शताब्दी से पहले इस शब्द का प्रयोग हिंदू धर्म के रूप में नहीं होता था। सबसे पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारियों और उच्च अधिकारियों ने हिंदू शब्द को धर्म से जोड़ा। स्वामी विवेकानंद हिंदू धर्म के एक महान विद्वान गुज़रे हैं, उन्होंने वर्ष 1883 में शिकागो में विश्व धर्म सम्मेलन में एक प्रभावशाली भाषण दिया था, जिसमें उन्होंने हिंदू धर्म की सबसे बड़ी विशेषता 'सहिष्णुता' को बताया था।

कर दिया। इसका कारण यह है कि जो लोग सिंधु नदी के आस-पास रहते थे, उनको बाहर से आने वालों ने, विशेषकर ईरानियों ने सिंधु के बजाए हिंदू कहा। ईरान में उस ज़माने में पहलवी भाषा बोली जाती थी, जिसमें 'स' के स्थान पर 'ह' के अक्षर का उच्चारण किया जाता था। इसलिए इन लोगों ने सिंधू के बजाए हिंदू कहना शुरू कर दिया। हिंदू धर्म के प्रसिद्ध विद्वान रजनीकांत शास्त्री ने अपनी पुस्तक 'हिंदू जाति का उत्थान और पतन' में भी इसी तरह की बातें बयान की हैं।

इसी तरह जब यहां यूनानी आए तो उन्होंने यहां के रहने वालों को सिंधू के बजाए इंदू कहना शुरू किया। इस वजह से इंडियन और इंडिया शब्द अस्तित्व में आए। रामधारी सिंह दिनकर ने लिखा है कि उन्नीसवीं सदी में जब भारत में नई रोशनी फैली तो, कुछ लोगों ने हिंदू नाम छोड़कर ख़ुद को आर्य कहलवाना शुरू कर दिया था। बहरहाल, यह मानसिकता आज भी कुछ लोगों में पाई जाती है।

लेखक के अनुसार, जब यहां के लोगों को पता चला कि हिंदू शब्द का ग़लत अर्थ निकाला जा रहा है, तो उन्होंने हिंदू शब्द का नया अर्थ निकाल लिया। इस प्रकार शब्दकोश में हिंदू शब्द का अर्थ 'बहादुर आदमी' दर्ज कर दिया गया। उपरोक्त पुस्तक के पृष्ठ 105 पर लेखक लिखता है कि यह परिभाषा हिन्दुओं में वीरता की भावना पैदा करने के लिए गढ़ ली गई। दूसरी जगह हिंदू शब्द की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि हिंदू उस व्यक्ति को कहते हैं जो हिंसा से नफ़रत करता हो। रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी इस पुस्तक में एक अलग बयान लिखा है कि हिंदू शब्द मुसलमानों के भारत आने से सैकड़ों वर्ष पहले भी बोला जाता रहा है।

इतिहासकार संजय सुब्रमण्यम के अनुसार, हिंदू शब्द केवल दक्कन क्षेत्र तक ही सीमित था। वैदिक सभ्यता के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि यह सभ्यता पूरी तरह आर्यों की ही सभ्यता थी। वास्तव में, द्रविड़ आर्यों और अन्य राष्ट्रों के विचारों, रीति-रिवाजों और सभ्यताओं के मेल से यह सभ्यता अस्तित्व में आई है। विभिन्न हिंदू विद्वानों के अनुसार, हिंदू शब्द किसी मज़हब या धर्म का नाम नहीं, बल्कि एक क्षेत्र विशेष में रहने वाले लोगों का नाम है, जोकि विदेशियों ने दिया है। इससे यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि हिंदू शब्द एक भौगोलिक प्रतीक है, न कि धार्मिक प्रतीक।

बहरहाल, अब हिंदू शब्द निस्संदेह मज़हब और धर्म के अर्थ में प्रयोग होने लगा है, लेकिन इसका मूल सनातन धर्म है। हिंदू धर्म की एक अजीब विशेषता यह भी बयान की जाती है कि इसकी कोई निश्चित बुनियादी आस्था नहीं है। एक व्यक्ति जो एक ईश्वर को माने या सैकड़ों दवी देवताओं को माने, या फिर ईश्वर या किसी देवी देवताओं को न माने, वह भी हिंदू कहलाएगा। कोई व्यक्ति मूर्ती पूजा करे या न करे, फिर भी वह हिंदू धर्म के दायरे में शामिल होगा। जो व्यक्ति धार्मिक पुस्तकों, जैसे रामायण, महाभारत या गीता पर यक़ीन रखता हो या फिर इनको न मानता हो, उसे भी हिंदू माना जाएगा। एक ईश्वर पर यक़ीन रखने वाले और एक नास्तिक को भी हिंदू ही कहा जाएगा।

राम और सीता की पूजा करने वाला भी हिंदू और इसके विपरीत रावण की पूजा करने वाला भी हिंदू ही कहलाता है। उपरोक्त विवरण से यह तथ्य बहुत स्पष्ट है कि हिंदू धर्म की कोई निश्चित बुनियादें नहीं हैं। कुछ लोग कहते हैं कि यह हिंदू धर्म का यही एक गुण है कि इसमें बहुत व्यापकता पाई जाती है। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमिला थापर के अनुसार, पंद्रहवीं शताब्दी से पहले इस शब्द का प्रयोग धर्म के रूप में नहीं होता था। सबसे पहले ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारियों और उच्च अधिकारियों ने हिंदू शब्द को धर्म से जोड़ा। स्वामी विवेकानंद हिंदू धर्म के एक महान विद्वान गुज़रे हैं, उन्होंने वर्ष



1883 में शिकागो में विश्व धर्म सम्मेलन में एक प्रभावशाली भाषण दिया था, जिसमें उन्होंने हिंदू धर्म की सबसे बड़ी विशेषता 'सहिष्णुता' को बताया था। इस अवसर पर उन्होंने एक कहानी भी सुनाई थी, वह यह कि एक कुएं में एक मेंढक रहता था। वह कुएं को ही सब कुछ समझता था। संयोग से एक समुद्र से एक दूसरा मेंढक वहां आ गया। कुएं के मेंढक ने उससे पूछा कि तुम कहां से आए हो? उसने समुद्र का हवाला दिया। कुएं के मेंढक ने कहा, 'क्या समुद्र इतना बड़ा होता है जितना बड़ा यह कुवां?' बहरहाल, विवेकानंद ने कहा था कि हर आदमी अपने धर्म को ही बड़ा समझता है। व्यक्ति को अपने धर्म से बाहर निकल कर भी देखना चाहिए। विवेकानंद ने कहा कि शिकागो के इस सम्मेलन ने कुएं की दीवारों को तोड़कर एक महान विस्तार दिया है ताकि हम अन्य धर्मों के बारे में भी सोचें। यह कहानी सुनकर पूरी सभा ने ज़बरदस्त दाद दी थी।

हिंदुत्व शब्द का संबंध हिंदू धर्म से नहीं है बल्कि हिंदुत्व का अर्थ हिंदू सभ्यता से है। यह शब्द विनायक दामोदर सावरकर द्वारा गढ़ा गया है। सावरकर ने पहली बार वर्ष 1923 में इस शब्द का इस्तेमाल किया था। इससे पहले स्वामी विवेकानंद या स्वामी राम तीर्थ आदि ने हिंदुत्व शब्द का इस्तेमाल नहीं किया है। सावरकर, जिसने हिंदुत्व शब्द का इस्तेमाल किया वह ख़ुद एक नास्तिक था।

उसने बार-बार कहा है कि उसका हिंदू धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। उसका यह दर्शन नफ़रत पर आधारित है। उसने कहा कि यह देश यहां के रहने वालों का है। जो लोग बाहर से आए थे, जैसे मुस्लिम या ईसाई, उन्होंने इस देश को नुक़सान पहुंचाया। सावरकर गांधी जी के अहिंसा और हिंदू-मुस्लिम एकता के दर्शन के भी ख़िलाफ़ था। कुछ लोगों का विचार यह है कि हिंदुत्व अमेरिका और भारत की मिलीभगत है। इसका मक़सद इस्लाम के प्रसार को रोकना और भारतीय बाज़ारों पर क़ब्ज़ा करना है।

बहरहाल, हम हिंदुत्व का अर्थ हिंदू सभ्यता के रूप में ही लेते हैं, तो यह कोई कठिन समस्या नहीं है, इसलिए कि सभ्यता का अभिप्राय रहन-सहन, खान-पान, पहनावा और रीति-रिवाजों से होता है। इन रीति-रिवाजों और व्यवहारों में धर्म के तौर तरीक़े भी शामिल हैं। क्या इसमें कोई संदेह है कि भारत के विभिन्न इलाक़ो और राज्यों में रहन-सहन के अलग-अलग तरीक़े पाये जाते हैं? समय के साथ इन रीति-रिवाजों और तरीक़ों में बदलाव होता रहता है। तथ्य यह है कि मानव का व्यवहारिक जीवन लगातार बदल रहा है।

हमारे वे भाई जो हिंदुत्व को सभ्यता मानते हैं, वे अपने रीति-रिवाजों और संस्कृति में जो बातें शामिल करना चाहें तय कर लें, उस पर अमल करें और उसका प्रचार भी करें, लेकिन दूसरों को इसे अपनाने के लिए मजबूर न करें। जो लोग इसे उपयोगी और बेहतर महसूस करेंगे, वे इसे अपना लेंगे, लेकिन अगर इस हिंदुत्व के मसले को गहराई से देखा जाए तो इसका मक़सद हिंदुत्व की आड़ में सत्ता हासिल करना है। इस तरह नफ़रत की राजनीति पर अमल करके बेगुनाह और सीधे-साधे लोगों को धोखा देना है, लेकिन अब धीरे-धीरे लोग इस खेल को समझ गए हैं।

वास्तव में यदि हिंदुत्व का मतलब हिंदू सभ्यता या भारतीय सभ्यता होता, तो इस सभ्यता की विशेषताएं बयान की जातीं। इसे लिखकर सार्वजनिक किया जाता और इस पर अमल किया जाता, लेकिन ऐसा कुछ नहीं है। जो चीज़ खुली आंखों से दिखाई देती वह इस्लाम, मुसलमानों और दलितों से दुश्मनी है। इसका नुक़सान यह है कि युवा पीढ़ी में सहनशक्ति ख़त्म हो रही है, जोकि हिंदू धर्म की प्रमुख विशेषता बताई जाती थी। इसका नुक़सान यह भी है कि युवा पीढ़ी हर उस व्यक्ति के ख़िलाफ़ हो जाएगी जो उससे असहमत हो। इसलिए परिवारों में, समाज के विभिन्न वर्गों में नफ़रत की फ़सल उग रही है। ऐसे लोग ख़ुद इस देश के दुश्मन हैं। काश लोग अक़्ल से काम लें। ■■

انجمن ترقی اردو جھارکھنڈ

اردو زبان اور تعلیم کے تحفظ و بقا پر خصوصی توجہ دیں

ایک اہم اپیل

۱۔اردو کی مادری زبان کی حیثیت سے تعلیم وتدریس پر خصوصی توجہ دیتے ہوئے اپنے بچوں اور بچیوں کو لازماً اردو لکھنا، پڑھنا، سکھائیں، اسے گھر گھر رائج کریں اور انفرادی اور اجتماعی دونوں سطحوں پر اس کا بہ ہرصورت نظم کریں۔اشد ضروری ہے کہ ہر محلے اور ٹولے میں اردو کے آزاد مکاتب قائم کیے جائیں اور صاحب استطاعت افراد کے تعاون سے اردو اور اس کے ساتھ دینیات کی مفت تعلیم کے انتظام کو یقینی بنائیں۔

۲۔اپنی رہائش گاہ پر نام کی تختی اور دکان کے سائن بورڈ اردو میں بھی لگائیں۔

۳۔شادی بیاہ اور دیگر تمام تقریبات کے دعوت نامے اردو میں لازماً جاری کریں۔

۴۔اردو جھارکھنڈ کی دوسری سرکاری زبان ہے۔لہذا سرکاری محکموں اور دفتروں میں عرضیاں اور درخواستیں ضرور بالضرور اردو میں دیں۔

۵۔اپنے اداروں اور تنظیموں سے متعلق اعلانات اور اشتہارات اردو میں التزماً شائع کرائیں اور اس کو اولیت دیں۔

۶۔اپنے پسندیدہ اردو اخبارات اور اچھے اور صحت مند اردو رسالے اور کتابیں برابر مطالعے میں رکھیں اور انہیں اپنی حیثیت اور اہلیت کے مطابق خرید کر پڑھنے پر توجہ دیں۔اپنے بچوں کو بھی ان کے لیے شائع ہونے والے صاف ستھرے رسائل فراہم کریں اور ان سے استفادے کا موقع دیں۔

۷۔اردو کے جن اسکولوں میں اردو کی ابتدائی درسی کتابیں حکومت کے ذریعہ فراہم نہیں کی جاتی ہیں وہاں اردو کی تدریس کا انتظام کرنے اور اسے جاری رکھنے کی کوشش کریں۔

۸۔اردو کے جو سرکاری نیز غیر سرکاری اسکول اردو میں درسی کتابوں کے فراہم نہ کیے جانے کی وجہ سے ہندی میڈیم اسکول میں تبدیل ہوتے جارہے ہیں ان کی اردو ذریعہ تعلیم کے اسکول کی حیثیت سے پہچان بحال کرنے اور قائم رکھنے پر توجہ دیں۔

۹۔مادری زبان میں لازمی ابتدائی تعلیم کے بنیادی آئینی حق (A 350) کے تحت اردو سکولوں میں پہلے سے آٹھویں درجے تک اردو کی تعلیم کا کلی طور پر نظم کرنے اور اسے ذریعہ تعلیم وامتحان کی حیثیت سے سکنڈری اور انٹر (2+) کی سطح تک جاری رکھ کر اردو تعلیم کے نظام کی بنیاد مستحکم کرنے پر توجہ دی جائے۔

۱۰۔اردو اسکولوں کی انتظامیہ، معلمین اور انجمن ترقی اردو سے اس سلسلے میں خصوصی تعاون اور ان کی رہنمائی حاصل کی جاسکتی ہے۔

منجانب عہدہ داران واراکین انجمن ترقی اردو، جھارکھنڈ

ज्वलंत



नफ़रत भरे बोल और हमारी ज़िम्मेदारियां

प्रो. सलीम इंजीनियर

पिछले कुछ समय से हम यह देख रहे हैं कि कुछ सांप्रदायिक और फासीवादी मानसिकता के लोग विभिन्न प्रकार के बयान दे रहे हैं। कुछ लोगों और संगठनों द्वारा धर्म के नाम पर लोगों को जमा करके भड़काऊ, हिंसा एवं घृणा फैलाने वाली बहुत ही ख़तरनाक बातें लगातार की जा रही हैं। यक़ीनन ऐसे बयान और घोषणएं हम सबके लिए बेहद दुखद हैं। इस देश में न्यायप्रिय, शांति, प्रेम और भाईचारे का समर्थन करने वाले लोग बड़ी तादात में इस पर अफ़सोस जता रहे हैं।

अफ़सोस की बात तो यह है कि एक समुदाय विशेष के ख़िलाफ़ खुलकर लोगों को इस तरह से भड़काने और उकसाने वाले लोगों के ख़िलाफ़ सरकार और पुलिस कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं कर रही है। इस वजह से ऐसा लगता है कि उनके हौसले और बढ़ते जा रहे हैं। अपने राजनीतिक हितों के चलते कुछ लोग ऐसी चीज़ों का सहारा ले रहे हैं। उन्हें इस बात का पूरा भरोसा है कि इस प्रकार के नफ़रत भरे एजेंडे को आगे बढ़ाने के बावजूद उनके ख़िलाफ़ कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं होगी। इसी कारण से ऐसी घटनाएं लगातार हो रही हैं।

इस तरह की घटनाओं, बयानों, भड़काने और उकसाने वाली चीज़ों पर हमें संजीदगी के साथ ग़ौर करने की ज़रूरत है। इस पर फ़ौरी तौर पर कोई प्रतिक्रिया देना या जिस तरह की बातें कही जा रही हैं उसी भाषा और उसी अंदाज़ में प्रतिक्रिया देना अपनी भावनाओं का प्रदर्शन करना एक प्रकार से उनके एजेंडा को ही पूरा करने जैसा होगा।

इसलिए इसका एक बेहतरीन जवाब तो यह है कि हम बहुत ही संजीदगी के साथ ऐसी चीज़ों को नज़रअंदाज़ भी करें और सरकार एवं क़ानून को लागू कराने वाली एजेंसियों व पुलिस का ध्यान इस ओर दिलाएं। यदि कहीं कोई क़ानूनी चाराजोई करने की ज़रूरत हो तो उसे भी करें। सीधे तौर पर ख़ुद से ऐसी कोई भी प्रतिक्रिया देने से बचें जिससे उनके एजेंडे को फ़ायदा पहुंचता हो। इस मामले में हमें बहुत ही सावधान व सतर्क रहने और बचने की ज़रूरत है। विशेष रूप से हमारे देश के एक अहम और बड़े राज्य उत्तर प्रदेश में कुछ महीनों के बाद विधानसभा चुनाव होने वाले हैं। इसको सामने रखते हुए भी



ऐसा अंदेशा है कि इस तरह की घटनाएं और ज़्यादा होंगी।

इसलिए इस पूरी चाल और इस जाल को हमें समझने की ज़रूरत है। ये सारी कोशिशें हमें इस अंदाज़ में प्रतिक्रिया देने के लिए मजबूर करने के लिए की जा रही हैं ताकि समाज में एक सांप्रदायिक ध्रुवीकरण पैदा हो जो वे चाहते हैं और वे राजनीति में इसका फ़ायदा उठा सकें। ऐसी सूरत में हमारा रवैया यह होना चाहिए कि हम ऐसी चीज़ों में न उलझें और सीधी प्रतिक्रिया देने के बजाय क़ानून और प्रशासन का ध्यान इस ओर दिलाएं।

जो लोग इस तरह की बातें कर रहे हैं दरअस्ल, वे क़ानून को चुनौती दे रहे हैं। वे लोग इस देश के संविधान और क़ानून को लागू करने वाली सरकार के ख़िलाफ़ चुनौती बन रहे हैं। इसलिए इस प्रकार की चीज़ों को हमें उसी अंदाज़ में लेने की ज़रूरत है कि क़ानून अपना काम करे। क़ानून को अपने हाथ में लेने वाले और क़ानून तोड़ने वाले जो लोग हैं उनके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई हो।

इस पूरी चाल और इस जाल को हमें समझने की ज़रूरत हैं। ये सारी कोशिशें हमें इस अंदाज़ में प्रतिक्रिया देने के लिए मजबूर करने के लिए की जा रही हैं ताकि समाज में एक सांप्रदायिक ध्रुवीकरण पैदा हो जो वे चाहते हैं और वे राजनीति में इसका फ़ायदा उठा सकें। ऐसी सूरत में हमारा रवैया यह होना चाहिए कि हम ऐसी चीज़ों में न उलझें और सीधी प्रतिक्रिया देने के बजाय क़ानून और प्रशासन का ध्यान इस ओर दिलाएं।

यक़ीनन ऐसी घटनाएं देश और समाज के लिए बेहद ख़तरनाक हैं। इससे समाज में दरारें पैदा होगी और नफ़रतें बढ़ेंगी और इसके नतीजे में देश के विकास पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। यह बेहद गंभीर मामला है और आने वाले कुछ महीनों में, उत्तर प्रदेश चुनावों के मद्देनज़र ऐसी और चीज़ें आ सकती हैं। इसलिए पूरी संजीदगी के साथ इन चालों और इस एजेंडे को समझते हुए इसे नाकाम करने की ज़रूरत है।

ऐसी बातों से न तो डरने और भड़कने की ज़रूरत है और न ही उसी अंदाज़ और वैसी ही भाषा में प्रतिक्रिया देने की ज़रूरत है। ऐसे समय में आवश्यकता इस बात की है कि देशभर के न्यायप्रिय लोगों, जिनकी एक बहुत बड़ी तादाद हमारे देश में है, उनके साथ मिलकर हम इस तरह के नफ़रत के एजेंडे को कामयाब न होने दें। ■■

अभिमत



राम पुनियानी

नफ़रत नहीं, शांति

बंधुत्व की अवधारणा आधुनिक राष्ट्र-राज्य के आधार स्तंभों में से एक है। स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व, फ्रांसीसी राज्य क्रांति के ध्येय वाक्य थे।



इस क्रांति ने सामंतशाही और राजशाही का अंत किया और आधुनिक राष्ट्र-राज्य के निर्माण की राह प्रशस्त की। इस क्रांति ने प्रजातंत्र का भी आग़ाज़ किया। अफ़सोस कि इन मूल्यों को भारत के मानस में अपेक्षित स्थान नहीं मिल सका।

भारतीय राष्ट्र के निर्माण की प्रक्रिया औपनिवेशिक काल में शुरू हुई। इसके साथ ही आधुनिक राष्ट्र-राज्य के सार्वभौमिक मूल्यों का विकास भी शुरू हुआ। भारत में राष्ट्रीय समुदाय के निर्माण की प्रक्रिया, औपनिवेशिक-विरोधी आन्दोलन के समानांतर चलती रही। राष्ट्रीय समुदाय से आशय है- एक ऐसी व्यापक भारतीय पहचान जो धर्म, जाति, क्षेत्र, नस्ल और भाषा की पहचानों से ऊपर हो।

राष्ट्रीय आन्दोलन ने सभी वर्गों के लोगों को भारतीय के रूप में आन्दोलन का हिस्सा बनाया। परन्तु इतिहास सीधी रेखा में नहीं चलता। जहां गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय आंदोलन ने लोगों को एक किया वहीं सांप्रदायिक ताक़तों ने धर्म-आधारित पहचान पर ज़ोर दिया। ये प्रवृत्तियां, उस सम्प्रदायवादी राजनीति का हिस्सा थीं, जिसने लोगों को एक करने के राष्ट्रीय आन्दोलन के अभियान को कमज़ोर किया।

आज स्वतंत्रता के सात दशक बाद भी हम लगभग उसी स्थिति में हैं, जहां हम तब थे जब गांधी ने देश को धर्म



की सीमाओं से ऊपर उठकर एक करने का हर संभव प्रयास किया था। पिछले तीन दशकों में सांप्रदायिक राजनीति के बढ़ते बोलबाले के कारण धार्मिक समुदायों के बीच गहरी खाई बन गयी है। जो लोग आज़ादी की लड़ाई और भारतीय संविधान के मूल्यों को ज़िंदा रखना चाहते हैं, उन्हें समझ नहीं आ रहा है कि वे उस बंधुत्व, उस परस्पर लगाव को कैसे वापस लाएं, जिसने भारत को एक राष्ट्र बनाया है।

इस सिलसिले में विभिन्न समुदायों को एक-दूसरे की परम्पराओं और आस्थाओं का सम्मान करना सिखाया जाए। लोगों को यह बताया जाए कि सभी धर्मों के मूल में लगभग एक-से नैतिक सिद्धांत हैं। भक्ति और सूफ़ी संत नैतिक सिद्धांतों के पैरोकार थे। यही बात गांधी के हिन्दू धर्म के बारे में भी सही है, जो समावेशी था और जो सभी धर्मों के लोगों को आकर्षित करता था।

इस सिलसिले में विभिन्न समुदायों को एक-दूसरे की परम्पराओं और आस्थाओं का सम्मान करना सिखाया जाए। लोगों को यह बताया जाए कि सभी धर्मों के मूल में लगभग एक-से नैतिक सिद्धांत हैं। भक्ति और सूफ़ी संत नैतिक सिद्धांतों के पैरोकार थे।

वर्तमान में ऐसे कई सामाजिक कार्यकर्ता हैं, जो इस राह पर चलने का प्रयास कर रहे हैं।

राज्य का यह कर्तव्य है कि वह धार्मिक सद्भाव को बढ़ावा दे। कई लोग कहते हैं कि धर्मनिरपेक्षता की पक्षधर ताक़तें भारत की धार्मिक जनता से इसलिए नहीं जुड़ पा रही हैं, क्योंकि वे धर्म की भाषा में बात नहीं करती हैं। गांधी और ख़ान अब्दुल ग़फ़्फ़ार ख़ान धर्म को एक नैतिक शक्ति, एक आध्यात्मिक राह के रूप में देखते थे। उनके और उनके जैसे अन्य लोगों के परिदृश्य से ग़ायब हो जाने के बाद सांप्रदायिक ताक़तों ने धर्मों के नैतिक घटक की अवहेलना करते हुए उन्हें सिर्फ़ संकीर्ण पहचान से जोड़ दिया है। वे धर्मों का उपयोग लोगों को बांटने के लिए कर रहे हैं।

हम लोग एक बहुत अजीब से दौर में जी रहे हैं। धर्मों के बीच की खाई चौड़ी होती जा रही है और जो लोग उसे भरने का प्रयास कर रहे हैं, उन पर उसे और गहरा करने का आरोप चस्पा किया जा रहा है। हमें आत्मचिंतन करना ही होगा। हमें गांधी और सीमान्त गांधी के पथ पर चलना ही होगा। हमें उनका सम्मान करना होगा, क्योंकि वे समावेशी भारत के निर्माण की राह के हमारे हमसफ़र हैं।

■■ *(नवजीवन से साभार)*

इतिहास के साथ यह अन्याय!!

इतिहास का सच और सच का इतिहास



प्रो॰ विश्म्भरनाथ पाण्डेय



उड़ीसा के भूतपूर्व राज्यपाल, राज्यसभा के सदस्य और इतिहासकार प्रो॰ विश्म्भरनाथ पाण्डेय ने अपने अभिभाषण और लेखन में उन ऐतिहासिक तथ्यों और वृत्तान्तों को उजागर किया है, जिनसे भली-भांति स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास को मनमाने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा गया है। उन्होंने कहा-

''अब मैं कुछ ऐसे उदाहरण पेश करता हूं, जिनसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि ऐतिहासिक तथ्यों को कैसे विकृत किया जाता है।''

जब मैं इलाहाबाद में 1928 ई॰ में टीपू सुल्तान के संबंध में रिसर्च कर रहा था, तो ऐंग्लो-बंगाली कॉलेज के छात्र-संगठन के कुछ पदाधिकारी मेरे पास आए और अपने 'हिस्ट्री-एसोसिएशन' का उद्घाटन करने के लिए मुझको आमंत्रित किया। ये लोग कॉलेज से सीधे मेरे पास आए थे। उनके हाथों में कोर्स की किताबें भी थीं, संयोगवश मेरी निगाह उनकी इतिहास की किताब पर पड़ी। मैंने टीपू सुल्तान से संबंधित अध्याय खोला तो मुझे जिस वाक्य ने बहुत ज़्यादा आश्चर्य में डाल दिया वह यह था-''तीन हज़ार ब्राह्मणों ने आत्महत्या कर ली, क्योंकि टीपू उन्हें ज़बरदस्ती मुसलमान बनाना चाहता था।''

इस पाठ्य-पुस्तक के लेखक महामहोपाध्याय डॉ॰ हरप्रसाद शास्त्री थे जो कलकत्ता विश्वविद्यालय में संस्कृत के विभागाध्यक्ष थे। मैंने तुरंत डॉ॰ शास्त्री को लिखा कि उन्होंने टीपू सुल्तान के संबंध में उपरोक्त वाक्य किस आधार पर और किस हवाले से लिखा है। कई पत्र लिखने के बाद उनका यह जवाब मिला कि उन्होंने यह घटना 'मैसूर गज़ेटियर' से उद्धृत की है। मैसूर गज़ेटियर न तो इलाहाबाद में और न तो इम्पीरियल लाइब्रेरी, कलकत्ता में प्राप्त हो सका। तब मैंने मैसूर विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर बृजेन्द्र नाथ सील को लिखा कि डॉ॰ शास्त्री ने जो बात कही है, उसके बारे में जानकारी दें। उन्होंने मेरा पत्र प्रोफ़ेसर श्री कन्टइया के पास भेज दिया जो उस समय मैसूर गज़ेटियर का नया संस्करण तैयार कर रहे थे।

प्रोफ़ेसर श्री कन्टइया ने मुझे लिखा कि तीन हज़ार ब्राह्मणों की आत्महत्या की घटना 'मैसूर गज़ेटियर' में कहीं भी नहीं है और मैसूर के इतिहास के एक विद्यार्थी की हैसियत से उन्हें इस बात का पूरा यक़ीन है कि इस प्रकार की कोई घटना घटी ही नहीं है। उन्होंने मुझे सूचित किया कि टीपू सुल्तान के प्रधानमंत्री पुनैया नामक एक ब्राह्मण थे और उनके सेनापति भी एक ब्राह्मण कृष्णराव थे।

उन्होंने मुझको ऐसे 156 मंदिरों की सूची भी भेजी जिन्हें टीपू सुल्तान वार्षिक अनुदान दिया करते थे। उन्होंने टीपू सुल्तान के तीव पत्रों की फ़ोटो कापियां भी भेजीं जो उन्होंने श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य को लिखे थे और जिनके साथ सुल्तान के अति घनिष्ठ मैत्री संबंध थे। मैसूर के राजाओं की परंपरा के अनुसार टीपू सुल्तान प्रतिदिन नाश्ता करने के पहले रंगनाथ जी के मंदिर में

जाते थे, जो श्रीरंगापटनम के क़िले में था। प्रोफ़ेसर श्री कन्टइया के विचार में डॉ॰ शास्त्री ने यह घटना कर्नल माइल्स की किताब 'हिस्ट्री ऑफ़ मैसूर (मैसूर का इतिहास) से ली होगी। इसके लेखक का दावा था कि उसने अपनी किताब 'टीपू सुल्तान का इतिहास' एक प्राचीन फ़ारसी पांडुलिपि से अनूदित किया है, जो महारानी विक्टोरिया के निजी लाइब्रेरी में थी। खोज-बीन से मालूम हुआ कि महारानी की लाइब्रेरी में ऐसी कोई पांडुलिपि थी ही नहीं और कर्नल माइल्स की किताब की बहुत-सी बातें बिल्कुल ग़लत एवं मनगढ़ंत हैं।

डॉ॰ शास्त्री की किताब पश्चिम बंगाल, असम, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में पाठ्यक्रम के लिए स्वीकृत थी। मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति सर आशुतोष चौधरी को पत्र लिखा और इस सिलसिले में अपने सारे पत्र व्यवहारों की नक़लें भेजीं और उनसे निवेदन किया कि इतिहास की इस पाठ्य-पुस्तक में टीपू सुल्तान सं संबंधित जो ग़लत और भ्रामक वाक्य आए हैं, उनके विरुद्ध समुचित कार्रवाई की जाए। सर आशुतोष चौधरी का शीघ्र ही यह जवाब आ गया कि डॉ॰ शास्त्री की उक्त पुस्तक को पाठ्यक्रम से निकाल दिया गया है। परन्तु मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि आत्महत्या की वही घटना 1972 ई॰ में भी उत्तर प्रदेश में जूनियर हाईस्कूल की कक्षाओं में इतिहास के पाठ्यक्रम की किताबों में उसी प्रकार मौजूद थी। इस सिलसिले में महात्मा गांधी की वह टिप्पणी भी पठनीय है जो उन्होंने अपने अख़बार 'यंग इंडिया' में 23 जनवरी 1930 ई॰ के अंक में पृष्ठ-31 पर की थी। उन्होंने लिखा था कि-

'मैसूर के फ़तह अली (टीपू सुल्तान) को विदेशी इतिहासकारों ने इस प्रकार पेश किया है कि मानो वह धर्मान्धता का शिकार था। इन इतिहासकारों ने लिखा है कि उसने अपनी हिन्दू प्रजा पर ज़ुल्म ढाए और उन्हें ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया, जबकि वास्तविकता इसके बिल्कुल विपरीत थी। हिन्दू प्रजा के साथ उसके बहुत अच्छे संबंध थे। ...मैसूर राज्य (अब कर्नाटक) के पुरातत्व विभाग (Archaeology Department) के पास ऐसे तीस पत्र है, जो टीपू सुल्तान ने श्रृंगेरी मठ के जगद्गुरु शंकराचार्य को 1793 ई॰ में लिखे थे। इनमें से एक पत्र में टीपू सुल्तान ने शंकराचार्य के पत्र की प्राप्ति का उल्लेख करते हुए उनसे निवेदन किया है कि वे उसकी और सारी दुनिया की भलाई, कल्याण और ख़ुशहाली के लिए तपस्या औा प्रार्थना करें। अंत में उसने शंकराचार्य से यह भी निवेदन किया है कि वे मैसूर लौट आएं, क्योंकि किसी देश में अच्छे लोगों के रहने से वर्षा होती है, फ़सल अच्छी होती है और ख़ुशहाली आती है।''

यह पत्र भारत के इतिहास में स्वर्णिम अक्षरों में लिखे जाने के योग्य है। 'यंग इंडिया' में आगे कहा गया है-

'टीपू सुल्तान ने हिन्दू मंदिरों विशेष रूप से श्री वेंकटरमण, श्रीनिवास और श्रीरंगनाथ मंदिरों को ज़मीनें एवं अन्य वस्तुओं के रूप में बहुमूल्य उपहार दिए। कुछ मंदिर उसके महलों के अहाते में थे यह उसके खुले ज़ेहन, उदारता एवं सहिष्णुता का जीता-जागता प्रमाण है। इससे यह वास्तविकता उजागर होती है कि टीपू एक महान शहीद थे। जो किसी भी दृष्टि से आज़ादी की राह का हक़ीक़ी शहीद माना जाएगा उसे अपनी इबादत में हिन्दू मंदिरों की घंटियों की आवाज़ से कोई परेशानी महसूस नहीं होती थी। टीपू ने आज़ादी के लिए लड़ते हुए जान दे दी और दुश्मन के सामने हथियार डालने के प्रस्ताव को सिरे से ठुकरा दिया। जब टीपू की लाश उन अज्ञात फ़ौजियों की लाशों में पाई गई तो देखा गया कि मौत के बाद भी उसके हाथ में तलवार थी-वह तलवार जो आज़ादी हासिल करने का ज़रिया थी। उसके ये ऐतिहासिक शब्द आज भी याद रखने के योग्य हैं: 'शेर की एक दिन की ज़िन्दगी लोमड़ी के सौ सालों की ज़िन्दगी से बेहतर है।' उसकी शान में कही गई एक कविता की वे पंक्तियां भी याद रखे जाने योग्य हैं, जिनमें कहा गया है कि 'ख़ुदाया, जंग के ख़ून बरसाते बादलों के नीचे मर जाना, लज्जा और बदनामी की ज़िन्दगी जीने से बेहतर है।' ■■

प्रोफ़ेसर श्री कन्टइया ने मुझे लिखा कि तीन हज़ार ब्राह्मणों की आत्महत्या की घटना 'मैसूर गज़ेटियर' में कहीं भी नहीं है और मैसूर के इतिहास के एक विद्यार्थी की हैसियत से उन्हें इस बात का पूरा यक़ीन है कि इस प्रकार की कोई घटना घटी ही नहीं है। उन्होंने मुझे सूचित किया कि टीपू सुल्तान के प्रधानमंत्री पुनैया नामक एक ब्राह्मण थे और उनके सेनापति भी एक ब्राह्मण कृष्णराव थे।

गीत

किसने शूल बो दिए ?

मंज़र भोपाली

ये धरती सोने का कंगन,
ये धरती चांदी का दर्पण,
ये धरती मस्जिद का आंगन,
ये धरती संतों का चन्दन,
ये किसने शूल बो दिये ??

ये धरती राम की,सीता की
ये धरती कृष्ण की,राधा की
ये धरती ग़ालिब, मीरा की,
ये धरती संत कबीरा की,
ये धरती प्रेम का है मधुबन
ये दिलवालों की है धड़कन,
ये किसने शूल बो दिये ??

ये धरती गंगा सी पावन,
ये धरती ख़्वाजा का मस्कन
इसी धरती पर हज़रत बल,
ये धरती सीता का आंचल
ये धरती सबको दे जीवन
ये है सब धर्मों का गुलशन
ये किसने शूल बो दिए ??

ये धरती सबसे कहती है
यहां एक जहती रहती है
ये धरती सबको है प्यारी
करे है सबकी ग़मख़्वारी
ये धरती ममता का दामन
अहिंसा इसके मन का धन
किसने शूल बो दिए??



DILKUSHA NURSING HOME PVT LTD









94 A, Dilkusha Street, Circus Avenue, Kolkata - 700017

Ph: 033-22803639, 22874318, 22901971



सामाजिक विकास की व्यापक अवधारणा

समाधान



सैयद सआदतुल्लाह हुसैनी

दुनिया में बसने वाले सभी इन्सान एक ही ख़ुदा के बंदे हैं और एक ही मां-बाप की औलाद हैं। आधुनिकता ने इन्सानों को विभाजित करके देखने का दुष्टिकोण पैदा किया। एक बार जब इन्सानों का विभाजन शुरू हो जाता है तो फिर रुकता नहीं है। राष्ट्र के बाद जाति, नस्ल, लिंग और क्षेत्र की पहचानें उभरने लगती हैं। हम यह समझते हैं कि पहचान की राजनीति और राजनीति के सभी विभाजनकारी रूपों की जड़ आधुनिक भौतिकवादी सोच है।

इस वैचारिक कारण के अलावा, आधुनिक लोकतांत्रिक समाजों के काम करने का अंदाज़ भी इस तरह की राजनीति को बढ़ावा देने का ज़रिया बना। व्यक्ति और राष्ट्र के दो छोरों के बीच, इन्सानी समूहों की और भी बहुत-सी शक्लें स्वाभाविक रूप से मौजूद थीं। आधुनिक उदार और लोकतांत्रिक समाजों में सभी दावों के बावजूद समाज के सभी समूहों के साथ समान व्यवहार नहीं किया जा सका। इन्सानों के बीच समानता के व्यवहार के लिए तो कुछ तरीक़े अपनाए गए, लेकिन समूहों को खुले दिल से स्वीकार करके उनको समानता का अधिकार देने का मुनासिब मेकेनिज़्म कम ही अपनाया जा सका। नतीजा यह हुआ कि विभिन्न समूहों के हितों ने सर उठाना शुरू कर दिया।

नस्ली समूह, मज़हबी इकाइयां, भाषाई पहचानें और लैंगिक पहचानें, इन सबने अपनी-अपनी पहचानों की

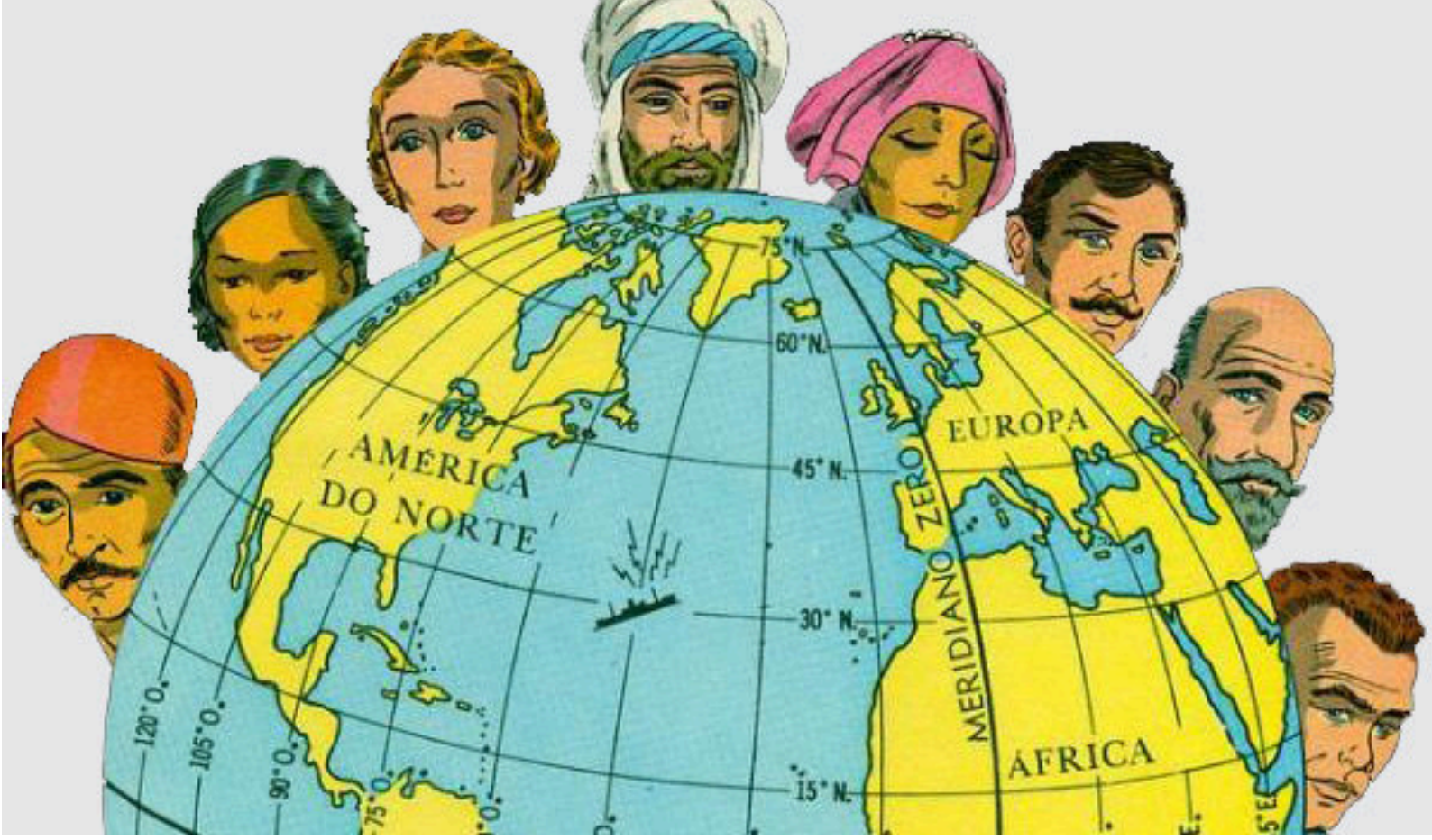

बुनियाद पर अपने हित साधने शुरू किए। देश के अंदर ताक़तवर समूहों ने कमज़ोर समूहों का शोषण शुरू किया। जैसे अमेरिका में अश्वेत लोगों का बुरी तरह शोषण हुआ। अंजाम यह हुआ कि कमज़ोर समूहों ने इसमें अपना अपमान महसूस किया और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष शुरू किया।

पहचान की राजनीति, सामूहिक मनोदशा की उस विशेषता की देन है जिसे मशहूर अमेरिकी चिंतक, फोकोयामा ने सम्मान की मांग (Isothymia)) कहा है। यानी समूह के आत्म-सम्मान की इच्छा। व्यक्ति के साथ सामाजिक समूहों में भी आत्म-सम्मान होता है, जिसका उनकी पहचान से गहरा संबंध होता है। किसी को यह एहसास हो कि उसको किसी समूह की पहचान की वजह से कमतर समझा जा रहा है तो उसके आत्म-सम्मान को चोट पहुंचती है। बराबरी और आत्म-सम्मान की प्राप्ति उसकी वरीयता बन जाती है और दूसरी समस्याओं को अनदेखा करके केवल उसी एक समस्या को वह अपनी राजनीति और सामूहिक प्रयासों की बुनियाद बनाने की कोशिश करने लगता है।

अमेरिका में अश्वेत लोगों ने अपने शोषण के ख़िलाफ़ संघर्ष शुरू किया। भारत में दलित राजनीति का आग़ाज़ हुआ। महिला आंदोलनों ने सर उभारा। ये सब पहचान की राजनीति की मिसालें हैं। यह वह राजनीति है, जिसमें कोई समूह राजनीतिक संघर्ष को अपनी पहचान के प्रदर्शन और पहचान (identity expression and identity assertion) से संबंधित सामूहिक हितों पर केंद्रित कर देता है। स्पष्ट रहे कि यहां हमारा आशय उन आंदोलनों से नहीं है जो अश्वेत लोगों को बराबरी का अधिकार दिलाने के लिए या महिलाओं के शोषण को ख़त्म करने के लिए, न्याय और समानता के उद्देश्य के साथ उभरे थे। हमार आशय उन आंदोलनों से है, जो पिछड़े या कमज़ोर तबक़ों को इन्साफ़ दिलाने के लिए समाज को विभाजित करके देखती रहीं और जिन्होंने अपनी राजनीति की बुनियाद महज़ कुछ तबक़ों के हित और कुछ और तबक़ों से बदले और नफ़रत को बनाया था।

बीसवीं सदी की राजनीति ज़्यादातर वैचारिक और आर्थिक मुद्दों पर केंद्रित थी। वामपक्ष का ज़ोर दौलत के समान विभाजन और मज़दूरों, किसानों और ग़रीबों के कल्याण पर था जबकि दक्षिणपंथ का ज़ोर धन के उत्पादन, राष्ट्रीय विकास और स्वतंत्र अर्थव्यवस्था पर था, लेकिन पहचान की राजनीति के परिदृश्य में अब वामपंथ का मतलब वह राजनीतिक रुझान हो गया जो अल्पसंख्यकों, प्रवासियों, कमज़ोर और पिछड़े वर्गों के अधिकार का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि दक्षिणपंथ का मतलब बहुसंख्यक वर्ग की (कथित) राष्ट्रीय पहचान और उसके उत्साह का प्रतिनिधि हो गया। आर्थिक हित से ज़्यादा पहचान से जुड़े सम्मान (dignity) के मुद्दे अहम हो गए। आज हालत यह है कि दुनिया भर में पहचान की राजनीति, एक प्रभावशाली रुझान और अधिकतर देशों में राजनीति की अहम प्रेरक शक्ति बन चुकी है। अमेरिका,

यूरोप, लैटिन अमेरिका और बहुत से एशियाई देशों में इसी का ज़ोर है। हमारे देश में तो इसका चलन अब बहुत पुराना हो चुका है।

पहचान की राजनीति ज़ुल्म और नाइन्साफ़ी के ख़िलाफ़ एक स्वाभाविक प्रतिक्रिया है। किसी समूह के आत्मसम्मान को ठेस पहुंचाई जाए, उसे क़दम-क़दम पर अपमानित किया जाए, या उससे जीने का हक़ छीन लिया जाए तो देश का विकास और ख़ुशहाली आदि सारी चीज़ें महत्वहीन हो जाती हैं। इस राजनीति ने कुछ देशों में समाज के कमज़ोर वर्गों को ऊंचा उठाने में भी अहम भूमिका निभाई है। ख़ुद हमारे देश में तमिलनाडू के द्राविड़, महाराष्ट्र के मराठा, उत्तर भारत के यादव आदि पिछड़े वर्ग इसी राजनीति के नतीजे में सत्ता तक पहुंचे, लेकिन इस प्रकार की राजनीति के नुक़सानों को भी समझना ज़रूरी है।

पहला बड़ा नुक़सान तो यही है कि इस राजनीति में सामाजिक बदलाव की व्यापक कल्पना बाक़ी नहीं रहती या बहुत कमज़ोर हो जाती है। राजनीतिक लक्ष्य सभी लोगों के लिए न होकर अपने-अपने ग्रुप के हित तक सीमित हो जाते हैं। इसी लिए इसे नव जनजातीयवाद (New-Tribalism) भी कहा जाता है। पूरे समाज को कैसे तरक़्क़ी दी जाए? कैसे सबके साथ इन्साफ़ हो? सभी इन्सानों के लिए बेहतर राजनीतिक दृष्टिकोण और रास्ता क्या हो सकता है? ये सारी बहसें बहुत कमज़ोर हो जाती हैं। विभिन्न पहचानों और समूहों के हित और अहित का टकराव राजनीतिक बहसों के मूल विषय बन जाते हैं। कमज़ोर समूह या अल्पसंख्यक जब केवल अपने समूह के हितों को अपनी राजनीति की बुनियाद बनाते हैं तो वह बाक़ी समूहों से कट जाते हैं। उनके नेतृत्व अपने-अपने समूहों तक सीमित हो जाते हैं। उनकी बातों में अन्य समूहों के लिए कोई दिलचस्पी बाक़ी नहीं रहती।

दूसरा बड़ा नुक़सान यह है कि पहचानों की कोई हद नहीं होती। मौजूदा समाज में हर आदमी की कई पहचानें होती हैं। जब पहचान की राजनीति आगे बढ़ती है तो छोटी-छोटी पहचानें भी उभरने लगती हैं और अपनी राजनीति शुरू कर देती हैं। दलित हितों की बुनियाद पर राजनीति होती है तो दलितों की विभिन्न उप जातियां भी ख़ुद को अलग-अलग समूहों के रूप में देखने लगती हैं और अपनी मांगें लेकर आगे बढ़ती हैं। उत्तर प्रदेश में दलित राजनीति अब जाटव, पासी, वाल्मीकि आदि जातियों में विभाजित है। उनमें से हर जाति की कई उप जातियां हैं। यही मामला तेलंगाना और आंध्रा में माला, मादीगा और महार जातियों का है। ख़ुद मुसलमानों की राजनीति में, कम से कम उत्तर प्रदेश और बिहार में, अब मुस्लिम जातियों की भूमिका बहुत उभरने लगी है। तीसरा और सबसे बड़ा नुक़सान यह होता है कि पहचान की राजनीति हमेशा द्वंद्वात्मक और दोहरेपन के साथ चलती है। इसका आधार लोकप्रियतावाद (populism) होता है। विरोध, ग़ुस्से और बदले की भावना का भरपूर प्रदर्शन, इस राजनीति का अनिवार्य अंग समझा जाता है। जब एक समूह राजनीति को अपनी पहचान से जुड़े मुद्दों तक सीमित कर लेता है, तो विरोधी समूह भी देर सवेर यही करने लगता है। हमारे देश में भाजपा उन काल्पनिक मुद्दों को जनता में बड़े पैमाने पर आम करके ही आगे बढ़ी है कि हिंदू ख़तरे में हैं।

कमज़ोर वर्गों का अस्ल हित तो तभी होता है जब समाज में विभाजन ख़त्म हो, सबके साथ इन्साफ़ हो, किसी भी समूह को अलग-थलग और विकास की आम दौड़ से दूर करने के रुझान पर रोक लगे। जानकारों का यह भी कहना है ऐसे उद्देश्य पहचान की राजनीति से हासिल नहीं होते, बल्कि यह राजनीति कमज़ोर तबक़ों को और अलग-थलग कर देती है।

जानकारों का कहना है कि पहचान की राजनीति अंततः अल्पसंख्यकों और कमज़ोर वर्गों को ही नुक़सान पहुंचाती है और इससे अंततः फ़ायदा समाज के ताक़तवर और बहुसंख्यक वर्गों ही को होता है। कमज़ोर वर्गों का अस्ल हित तो तभी होता है जब समाज में विभाजन ख़त्म हो, सबके साथ इन्साफ़ हो, किसी भी समूह को अलग-थलग और विकास की आम दौड़ से दूर करने के रुझान पर रोक लगे। जानकारों का यह भी कहना है ऐसे उद्देश्य पहचान की राजनीति से हासिल नहीं होते, बल्कि यह राजनीति कमज़ोर तबक़ों को और अलग-थलग कर देती है। पहचान की राजनीति एकरूपता की बुनियाद पर समाज का विभाजन करती है। ट्रंप के दौर में ऐसी ही स्थिति अमेरिका में पैदा हो गई थी और हमारे देश की स्थिति भी अब ख़राब होती जा रही है। चूंकि सबसे बड़ा सजातीय समूह बहुसंख्यक समूह होता है, इसलिए अंततः उसे स्थायित्व हासिल होता है। ताक़त और संसाधन बहुसंख्यकों के पास होते हैं और यह समूह जब अपने हितों पर केंद्रित हो जाता है तो अल्पसंख्यक वर्गों की मुश्किलें और बढ़ जाती हैं। ■■


اللہ کے رسول ﷺ نے ارشاد فرمایا۔
میں اچھے اخلاق کو مکمل کرنے کے لئے بھیجا گیا ہوں
(مؤطہ امام مالک:705)
With Best Compliment from
sagar
SAGAR FEEDS & FOODS
PROCESSING INDUSTRIES
Plot No. L-21, Gidc Concolim Industrial Estate
Concolim-403703 GOA
Email: sagarffpi@gmail.com

सद्भावना



डॉ. विपिन कुमार त्रिपाठी

मैं उसको ढूंढ़ रहा हूं !

मैंने हिन्दुस्तान का जो थोड़ा बहुत इतिहास पढ़ा है और अपने बचपन में जो कुछ देखा है, उसमें हिन्दुस्तान की आम जनता ने मिल-जुलकर रहना सीखा था। मेरे शिक्षक थे मौलवी अहमद बख़्श, सरकारी मास्टर थे। जब मेरी बहन चेचक के कारण गंभीर रूप से बीमार पड़ी और एक दिन उसकी तबियत जब कुछ ज़्यादा ही ख़राब हो गई तो मेरे पिता ने उसकी नब्ज़ देखकर कहा कि आज दोपहर तक यह मर जाएगी।



उस समय मैं कक्षा चार में पढ़ता था। जब मैं स्कूल गया तो मैंने मौलवी साहब से कहा, 'मास्टर साहब आज मेरी बहन दोपहर तक मर जाएगी।' मास्टर साहब बोले–'क्या हुआ उसको?' मैंने कहा, 'उसको बड़ी चेचक निकली है कई दिनों से खाया-पीया नहीं है, वह आखें भी नहीं खोल रही है।'

मौलवी साहब पूरे स्कूल में अकेले मास्टर थे। स्कूल में पांच कक्षाएं थीं और उसमें सत्तर बच्चे थे। मौलवी साहब ने पांचवी कक्षा के बच्चों से कहा कि छोटे बच्चों को इमला और सवाल दे दो और कराओ मैं अभी आता हूं। उन्होंने लोटे में पानी लिया और रास्ते में नीम का एक पेड़ था उस पर से पत्ते तोड़े और मुझे साथ लेकर मेरे घर की ओर चल पड़े। मौलवी साहब इससे पहले मेरे घर कभी नहीं आए थे। मैंने अपनी मां को आवाज़ लगाई, मास्टर साहब को दरवाज़े पर देखकर मेरी मां रोने लगीं और बोलीं– मास्टर साहब आज मेरी बेटी नहीं बचेगी।

मास्टर साहब बोले, कहां है आपकी बेटी। मास्टर साहब मेरी बहन के पास गए और क़ुरआन की कुछ आयतें पढ़ीं, दुआ की और नीम के पानी से मेरी बहन के ऊपर छिड़काव किया और वापस चले गए। दोपहर की नमाज़ पढ़ने के बाद दोबारा आए, दुआ की और फिर पानी का छिड़काव किया। मेरी बहन ने जब थोड़ा-सा मुंह खोला तो मास्टर साहब मेरी मां से बोले इसके मुंह में थोड़ा-सा पानी डाल दो। इसके बाद वे लगातार दो तीन दिन आते रहे और दुआ व पानी का छिड़काव करते रहे। मेरी बहन ठीक हो गई और आज ज़िन्दा है, ये है हमारे हिन्दुस्तान की तहज़ीब।

हिन्दुस्तान की आम जनता तो ऐसी ही है, भूल जाइए की लुटेरों ने क्या किया, गुंडों ने क्या किया। सत्तर, अस्सी प्रतिशत हिन्दुस्तान के मेहनत करने वाले मज़दूर, कारीगर और किसान, चाहे वे किसी भी मज़हब को मानने वाले हों ये देश का नहीं खाते, बल्कि ये देश को खिलाते हैं। अगर हमारे अंदर उनके दर्द का एहसास हो जाए तो हम इन्सान बन जाएं।

सारे जगत का मालिक एक है और सारे इन्सानों का ईश्वर भी एक ही है अलग नहीं हैं। जो व्यक्ति मेहनत और ईमानदारी की रोटी नहीं खाता वह ईश्वर के दरबार में नहीं पहुंच सकता। पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल.) ने यह कहा कि– ''ब्याज या सूदख़ोरी से दूर रहो।'' यानी किसी की मजबूरी का फ़ायदा उठाकर उसको लूटो मत। किसी की मेहनत मत हड़पो। यदि हमने इस बुनियादी उसूल को नहीं समझा तो हम विद्वान तो बन जाएंगे, किन्तु इन्सान नहीं बनेंगे।

ईश्वर ने इन्सान को जो शरीर दिया है उसमें उसने दिमाग़ भी दे रखा है, लेकिन दिमाग़ की वही सोच सही है जिससे, हमारी रूह ऊंची उठे, हमारा ज़मीर जगे। जिस सोच से ज़मीर मिट्टी में मिले वह सोच व्यर्थ है। सत्य और नैतिकता की बुनियादी बातें चहुंओर फैली पड़ी हैं, हमें बस आंख खोलकर उसे देखने की ज़रूरत है। हमें, आपको और हमारी आने वाली पीढ़ियों को अपनी सोच सच्चाई पर आधारित रखनी है, ग़लतफ़हमियों पर नहीं। हमने बहुत-सी ग़लतफ़हमियां पाल रखी हैं, अपने बारे में भी और दूसरों के बारे में भी। दुर्भावना का स्तर इतना बढ़ चुका है कि एक ग़रीब मेहनतकश मज़दूर में भी हम बादशाहों की तस्वीरें देखने लगते हैं।

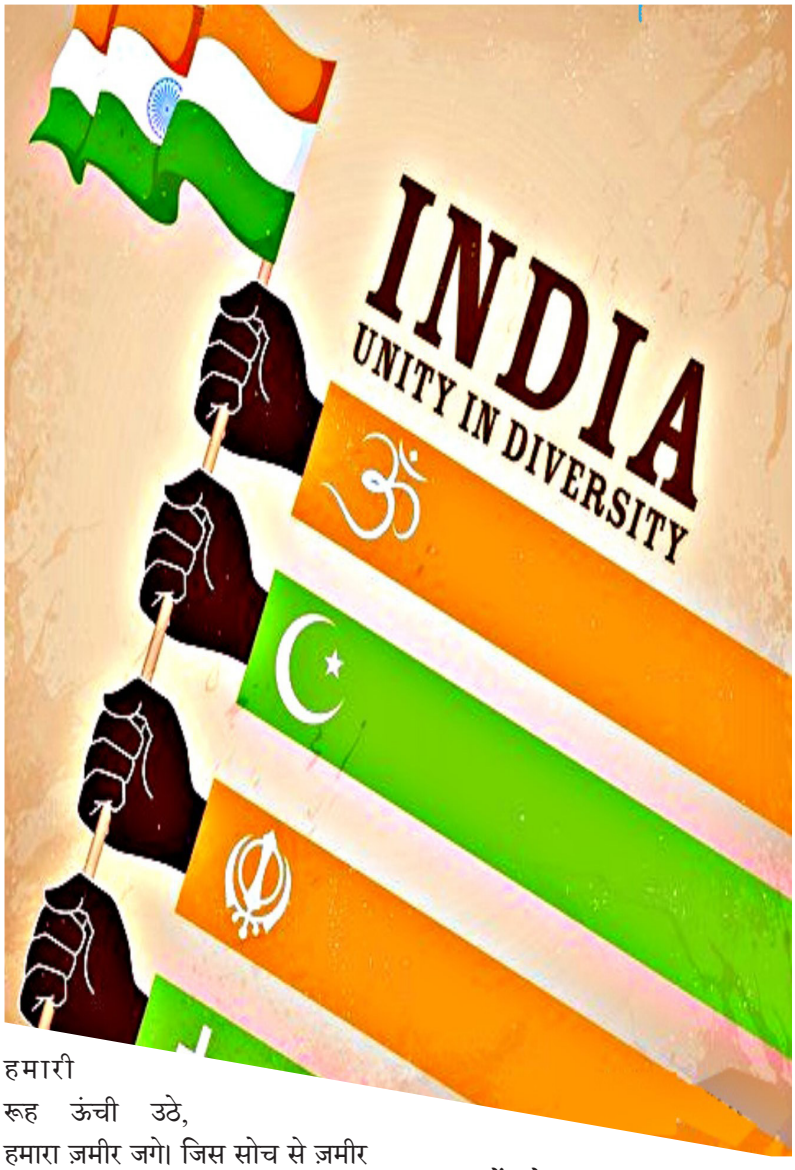

हमें हो क्या गया है? हमारी सोच यदि इमेजेज़, कल्पनाओं और बनी हुई तस्वीरों पर आधारित होगी तो वह सच्ची नहीं हो सकती और जिस सोच में सच्चाई नहीं होगी वह आपकी आत्मा को मज़बूती नहीं दे सकती। हमने अपने दिमाग़ में अलग-अलग समुदायों, जातियों और देशों की जो तस्वीरें बना रखी हैं, उसे हटाइए। सच्चाई के रास्ते में ये बहुत बड़ी बाधाएं हैं। हमें इस बीमारी से उबरने की ज़रूरत है। ■■

विशेष



सुभाष गाताडे

गांधी स्मृति

कितनी दूर-कितनी पास

30 जनवरी 1948 को एक सिरफिरे अतिवादी नाथूराम गोडसे ने स्वतंत्रता आंदोलन के महानायक गांधी जी की गोली मारकर हत्या कर दी थी। प्रस्तुत है उनकी पुण्यतिथि के अवसर पर विशेष लेख।



आख़िर 20वीं सदी के इस महान शख़्श, जिसने हमारी आज़ादी के आंदोलन की अगुआई की तथा अपने अंतिम दिनों में बहुसंख्या के ख़िलाफ़, अपने ही लोगों के ख़िलाफ़ संघर्ष किया तथा अपनी जान दे दी–उसकी मृत्यु के स्थान को देखने से हम क्यों बचते आए हैं?

गांधी जी की सुनियोजित और सुचिंतित हत्या से एक जागरूक कहलाने वाले समाज की एक सचेतन दूरी अपने समाज के बारे में कई प्रश्न खड़े करती है। क्या उस घटना स्थल पर पहुंचने से हम इसलिए बचते रहे हैं कि हम उन तमाम असुविधाजनक प्रश्नों का सामना नहीं करना चाहते, जो वहां जाकर हमारे या हमारे क़रीबियों में उठ सकते हैं और ऐसी बातों को सार्वजनिक दायरे में उठाने से आप वाक़िफ़ हों।

याद कर सकते हैं कि गांधी जी की हत्या के महज़ चार दिन बाद हिन्दुत्ववादी जमाअतों पर पाबंदी लगाने वाला आदेश जारी हुआ था। जब बल्लभभाई पटेल गृहमंत्री थे। आदेश में लिखा गया था कि, 'ऐसे संगठनों के.....सदस्यों की तरफ़ से अवांछित यहां तक कि देश के तमाम में इनके सदस्य हिंसक कार्रवाइयों में, जिसमें आगज़नी, डकैती और हत्याएं शामिल

हैं, मुब्तिला रहे हैं और वे अवैध ढंग से हथियार एवं विस्फोटक जमा करते रहे हैं। वे लोगों में पर्चे बांटते देखे गए हैं, और वे लोगों को यह अपील करत देखे गए हैं कि लोग आतंकी पद्धतियों का सहारा लें, हथियार इकट्ठा करें, सरकार के ख़िलाफ़ असंतोष पैदा करें।

27 फ़रवरी 1948 को प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को लिखे अपने ख़त में, जबकि गांधी जी की नाथुराम गोडसे एवं उनके हिंदुत्ववादी आतंकी गिरोह के हाथों हुई हत्या को तीन सप्ताह हो गए थे। पटेल ने लिखा था– 'सावरकर की अगुआई वाली हिंदू महासभा के अतिवादी हिस्से ने ही हत्या के इस षड्यंत्र को अंजाम दिया है....ज़ाहिर है उनकी हत्या का स्वागत हिंदुत्ववादी संगठनों के लोगों ने किया जो उनके चिन्तन एवं उनकी नीतियों की मुख़ालिफ़त करते थे।'

उन्हीं पटेल ने 18 जुलाई 1948 को हिंदू महासभा के नेता श्यामाप्रसाद मुखर्जी को लिखा था–

''.....हमारी रिपोर्टें इस बात को पुष्ट करती हैं कि ऐसे संगठनों की गतिविधियों के चलते.....मूल्क में एक ऐसा वातावरण बना जिसमें ऐसी त्रासदी (गांधी जी की हत्या) मुमकिन हो सकी। मेरे मन में इस बात के प्रति तनिक संदेह नहीं कि इस षड्यंत्र में हिंदू महासभा का अतिवादी हिस्सा शामिल था। ऐसे संगठनों की गतिविधियां सरकार एवं राज्य के अस्तित्व के लिए ख़तरा हैं। हमारी रिपोर्टें इस बात को पुष्ट करती हैं कि पाबंदी के बाद भी उनमें कमी नहीं आई है। दरअस्ल, जैसे-जैसे समय बीतता जा रहा है इनके कार्यकर्ता और दुस्साहसी होते जा रहे हैं और अत्याधिक तोड़फोड़ एवं विद्रोही कार्रवाइयों लगे हैं।''

गांधी से आपकी लाख वैचारिक असहमतियां हो सकती हैं, मगर आप इस सत्य से कैसे इन्कार कर सकते हैं कि सांप्रदायिक सद्भाव के लिए क़ुर्बानी देकर उन्होंने एक तरह से समूचे उपमहाद्वीप में अमन क़ायम किया था। उनकी हत्या के बाद भारत के अंदर ही नहीं बल्कि पाकिस्तान के अंदर भी अल्पसंख्यकों पर हमले बंद हुए थे। सरहद के दोनों ओर तमाम मासूमों की जान बची थी। आज़ादी के बाद उनकी कोशिशों का ही नतीजा था कि नवस्वाधीन मुल्क में कई जगहों पर मासूमों का ख़ून बहने रूका था। कोलकाता की मिसाल आपके सामने है।

2 अक्तूबर 1948, गांधी का आख़िरी जन्मदिन साबित हुआ। उस दिन सी. राजगोपालचारी ने लिखा, जिसका लब्बेलुआब यही था कि किस तरह गांधी की कोशिशों से शहर में क़ायम सांप्रदायिक सद्भाव का माहौल अभी भी बरक़रार है, जबकि देश के शेष हिस्सों में उन्माद उरूज पर है।

'मार्निंग न्यूज़' नामक अख़बार ने लिखा था–''कोलकाता गांधी जी द्वारा अंजाम दी गई उन कोशिशों को कभी नहीं भूलेगा जब उन्होंने शहर में संयम/स्थिरबुद्धिता क़ायम करने में सफलता हासिल की थी जबकि उन दिनों उसके तमाम नागरिकों से उसने फ़ौरी बिदाई ली थी...अपने करिश्माई बलबूते उन्होंने अपनी वास्तविक महानता का परिचय दिया था। जब उन्होंने कोलकाता के अपराधियों के भी हृदय परिवर्तन करने मे सफलता मिली थी...आज गांधी जी जब 79वें साल में दाख़िल हो रहे हैं और उनके नाम तमाम कामयाबियां दर्ज हैं। उन्हें इस बात को लेकर अत्यधिक सकून हो सकता है कि उन्होंने दुनिया की सबसे शक्तिशाली सैन्य शक्ति के सामने उसी तकनीक का प्रयोग सफलता से किया।'

यह अलग बात है कि कोलकाता की इन ख़बरों से गांधी क़तई प्रसन्न नहीं हुए थे, क्योंकि दिल्ली, पंजाब तथा देश के कई हिस्सों में अभी भी आग लगी हुई थी। द्विग्रता में उन्होंने मिल रही बधाइयों का जवाब देते हुए कहा था– 'मुबारकबाद से बेहतर होता कि उन्हें शोक संदेश दिए जाते।'

'गांधी की मृत्यु' शीर्षक से नाटक रचने वाले महान हंगेरियन नाटककार नेमेथ लास्लो ने अपने नाटक में इस अवसर पर गांधी का एक स्वगत भाषण पेश किया है–

मुझे अपने जीवन के 78वें जन्मदिन पर बधाइयां मिल रही हैं, मगर मैं अपने आप से पूछ रहा हूं इन तारों का क्या फ़ायदा? क्या ये सही नहीं होता कि मुझे शोक संदेश दिए जाते? एक वक़्त था जब मैं जो भी कहूं, लोग उप पर अमल करते थे। आज मैं क्या हूं? मरुस्थल में एक अकेली आवाज़। जिस तरफ़ देखूं, सुनने को मिलता है कि हिंदुस्तान की यूनियन में हम मुसलमानों को बर्दाश्त नहीं करना चाहते। आज मुसलमान है, कल पारसी, इसाई, यहूदी। इस तरह के हालात में इन बधाइयों का मैं क्या करूं?

नाटककार ने लिखा है कि, ''गांधी ने यह साबित कर दिखाया है कि परिशुद्ध औज़ारों से, नैतिक श्रेष्ठता के हथियारों से भी कोई ऐतिहासिक विजय पा सकता है और एक विशाल साम्राज्य को मुक्त करा सकता है तथा औपनिवेशिकता की प्रक्रिया को उलट सकता है।'' एक ग़ुलाम राष्ट्र तथा टासिल्वैनिया में रहने वाले अल्पसंख्यकों से हंगेरियनों की तुलना करते हुए नेमेथ लास्लो ने कहा कि अल्पसंख्यक का जीवन एक पौधे की तरह है, जबकि बहुसंख्यक राष्ट्र एक शिकारी जैसा होता है।

गांधी के मृत्यु स्थल से निरंतर रही

हमारी इस दूरी की गहरी विवेचना ज़रूरी है जो पूरे समाज की किसी गहरी कमी या असाध्य बीमारी की तरफ़ इशारा करती दिखती है, जो निरपराधों के हत्यारे की खुलेआम भर्त्सना करने के बजाय अचानक तटस्थ रुख़ इख़्तियार करती है और बेहद शालीन, बुद्धिमत्तापूर्ण अंदाज़ में हत्यारे के 'सरोकारों', उसकी 'चिंताओं' में झांकने लगती है।

यह अकारण नहीं कि हिन्दुत्व अतिवादी नाथुराम गोडसे-जो उस आतंकी मोडयूल का अगुआ था जिसने महात्मा गांधी की हत्या की-का बढ़ता सार्वजनिक महिमामण्डन हमारे समय की एक नोट करने लायक़ परिघटना है।

''...हमारे युग का नायक, सज्जनों, यह दरअस्ल एक चित्र है, किसी एक व्यक्ति का नहीं, वह एक समूची पीढ़ी के दुर्गुणों का समुच्चय है जो पूरे शबाब पर है।''

कुछ समय पहले 'आल्टन्यूज़' ने नाथुराम गोडसे पर एक स्टोरी की थी जहां गोडसे के हिमायतियों की बड़ी तादाद को उजागर किया था। लोग यह कहते हुए नज़र आए थे–

''गोडसे को ईश्वर ने भेजा था'', ''गांधी को फांसी दी जानी चाहिए थी'', ''गांधी को मारने के गोडसे के वाजिब कारण थे।'' ''मैं इस बात को दोहराता हूं कि मैं गोडसे का फैन हूं, फिर क्या हुआ?''

याद करें उसके हिमायतियों की तरफ़ से इस 'महान देशभक्त' के मंदिरों का देश भर में निर्माण करने की योजना भी बनी है। वैसे यह बात चुपचाप तरीक़े से लंबे समय से चल रही है। वर्ष 2015 में हिन्दू महासभा ने गोडसे के जीवन पर एक वेबसाइट भी शुरू की। संसद के पटल पर भाजपा के सांसद साक्षी महाराज ने गोडसे को 'देशभक्त' के तौर पर संबोधित किया था। 2014 के संसद के चुनावों में भाजपा की तरफ़ से प्रत्याशी रहे व्यक्ति ने यह लेख लिखकर खलबली मचा दी थी कि 'गोडसे ने ग़लत निशाना साधा था उसे गांधी को नहीं बल्कि नेहरू को मारना चाहिए था। जैसी कि उम्मीद की जा सकती है, भाजपा-जो कुछ समय से गांधी का भी गुणगान करती रहती है-ने अपने इन दो

2 अक्तूबर 1948, गांधी का आख़िरी जन्मदिन साबित हुआ। उस दिन सी. राजगोपालचारी ने लिखा, जिसका लब्बेलुआब यही था कि किस तरह गांधी की कोशिशों से शहर में क़ायम सांप्रदायिक सद्भाव का माहौल अभी भी बरक़रार है, जबकि देश के शेष हिस्सों में उन्माद उरूज पर है।

'होनहारों' के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं की।

महाराष्ट्र एवं पश्चिमी भारत के कई हिस्सों से 15 नवम्बर के दिन-जिस दिन नाथुराम को फांसी दी गयी थी- हर साल उसका 'शहादत दिवस' मनाने के समाचार मिलते रहते हैं। मुंबई एवं पुणे जैसे शहरों में तो नाथुराम गोडसे के 'सम्मान' में सार्वजनिक कार्यक्रम भी होते हैं। लोगों को यह भी याद होगा कि वर्ष 2006 के अप्रैल में महाराष्ट्र के नांदेड में बम बनाते मारे गए हिमांशु पानसे और राजीव राजकोंडवार के मामले की तफ़्तीश के दौरान ही पुलिस को यह समाचार मिला था कि किस तरह हिन्दुत्ववादी संगठनों के वरिष्ठ नेता उनके संपर्क में थे और आतंकियों का यह समूह हर साल 'नाथुराम बोलतोय' शीर्षक से एक नाटक का मंचन भी कई साल से हो रहा है।

दरअस्ल चीज़ें इतनी बेधड़क आगे बढ़ रही हैं कि गोडसे के सम्मान में पोस्टर मिलना राजधानी में भी आम हो चला है।

निश्चित ही गोडसे कोई अपवाद नहीं है नायक को 'गढ़ने' की हिन्दुत्ववादियों की अंतहीन-सी लगने वाली क़वायद में और जनता के एक मुखर हिस्से में उनकी स्वीकार्यता का।

मिसाल के तौर पर दो साल पहले शंभुलाल रैगर नाम से 'युग के एक नये नायक' से हम सभी रूबरू हुए हैं।

किसी भी साधारण व्यक्ति के लिए यह जानना सुन्न करने वाला हो सकता था कि सैकड़ों की तादाद में लोग–जो किसी दक्षिणपंथी तंजीम से ताल्लुक़ रखते थे–न केवल इस हत्यारे की हिमायत में सड़कों पर उतरे बल्कि उन्होंने उसके मानवद्रोही कारनामे को सही ठहराया, जहां वह एक निरपराध व्यक्ति को अपनी कुलहाड़ी से मारता दिखता है और उसका वीडियो भी जारी करता है, और किस तरह पांच सौ से अधिक लोगों ने 'उसके परिवार की सहायता के नाम पर' उसके बैंक खाते में लगभग 2.5 लाख रुपये भेजे। इतना ही नहीं बाद में रामनवमी के दिन निकलने वाली झांकी में भी शंभुलाल जैसे दिखने वाले व्यक्ति को बिठाकर उस रक्तरंजित प्रसंग को अभिनीत किया जा रहा था।

शंभुलाल के इस महिमामण्डन ने हमें लगभग दो दशक पहले के एक अन्य प्रसंग की याद दिलाई थी जब कुष्ठरोग निवारण में मुब्तिला एक पादरी ग्रैहम

स्टींस एवं उसके दो बच्चों-फिलिप और टिमोथी-को सूबा उड़ीसा के मनोहरपुर में नींद में ही पचास से अधिक लोगों के समूह ने ज़िंदा जला दिया था, जिस हत्यारे गिरोह की अगुआई रविन्द्र पाल सिंह उर्फ़ दारा सिंह कर रहा था। इस हत्यारे पर एक मुस्लिम व्यापारी शेख़ रहमान और अन्य ईसाई पादरी अरूल दास की हत्या करने के भी आरोप लगे थे। ग्रैहम स्टींस एवं उसके बच्चों की हत्या के जुर्म में उसे उम्र क़ैद की सज़ा सुनाई गई थी। अगर शंभु द्वारा अफ़राजुल की हत्या को 'लव जिहाद' का मुद्दा उठाकर 'औचित्य' प्रदान किया गया था तो स्टींस की हत्या को 'धर्मांतरण' के नाम पर 'सही' ठहराया जा रहा था।

कोई भी व्यक्ति जो दक्षिण एशिया के परिदृश्य पर निगाह रखे हुए हैं बता सकता है कि 'अतिवादी हत्यारों' का इस क़िस्म का महिमामण्डन यहां अपवाद नहीं है। हाल के समयों में कई सारे तर्कवादी, पत्रकार, विभिन्न आन्दोलनों के कार्यकर्ता किंवा किसी ज़िम्मेदारी के पद पर बैठे व्यक्तियों की ऐसे लोगों ने हत्या की है, जिसे दक्षिणपंथी दायरों में सेलिब्रेट किया गया था। पाकिस्तान/पंजाब के गवर्नर सलमान तासीर–जो वहां के ईशनिंदा क़ानून के ख़िलाफ़ थे तथा उसको हटाने की मांग कर चुके थे–के हत्यारे उनके अंगरक्षक मुमताज क़ादरी की क़ब्र के तीर्थ स्थान में रूपांतरण हमारे सबके सामने है। हज़ारों की तादाद में लोग हर सप्ताह वहां पहुंचकर 'धर्मरक्षक' क़ादरी के प्रति अपना सम्मान प्रकट करते हैं।''

ईशनिंदा क़ानून का विरोध करने वाले–जिसके चलते पाकिस्तान के हज़ारों लोगों की ज़िंदगियां तबाह हुई हैं–व्यक्ति के हत्यारे का यह महिमामण्डन या आप पेशावर के मिलिटरी स्कूल में घुसकर इस्लामिस्टों द्वारा की गई 150 से अधिक बच्चों की हत्या के कारनामे को देखें या बंगलादेश में अविजित रॉय जैसे कई ब्लॉगरों की इस्लामिस्टों द्वारा की गई हत्या को देखें, मायांमार में रोहिंग्या मुसलमानों का नस्लीय शुद्धिकरण पर ग़ौर करें या श्रीलंका में बौद्ध अतिवादियों द्वारा वहां के धार्मिक अल्पसंख्यकों-ईसाइयों, मुसलमानों और हिन्दुओं-का किया जा रहा उत्पीड़न देखें, आप बार-बार पाएंगे कि निशाना बनाकर की जा रही इस हिंसा को जनसमर्थन हासिल है।

हम जुझारू पत्रकार एवं सांप्रदायिकता विरोधी कार्यकर्ता गौरी लंकेश की अपने घर के दरवाज़े पर की गई हत्या को देख सकते हैं, जिसने समूचे मुल्क में उबाल पैदा किया था और इस हत्या का विरोध करने के लिए जगह-जगह प्रदर्शन हुए थे, मगर सबसे अधिक विचलित करने वाली बात थी कि कइयों ने इस बर्बर हत्या पर 'ख़ुशी प्रकट की थी।''

अपने ट्विट में जी न्यूज़ की पूर्व पत्रकार जागृति शुक्ला ने जो कहा वह इसी 'ख़ुशी' का एक नमूना था।

''...तो कम्यूनिस्ट गौरी लंकेश की निर्ममतापूर्वक हत्या हुई। कहा जाता है कि आपके किए का फल आपको भुगतना पड़ता है। आमेन''

इस मामले में सबसे विवादस्पद ट्विट सूरत, गुजरात के एक व्यापारी निखिल दधिच का था जिसमें उसने गौरी को 'कुतिया' कह दिया था। यह व्यापारी उन लोगों में शुमार था जिन्हें सत्ताधारी पार्टी के कई अग्रणी लोग फॉलो करते हैं जिसका ज़िक्र उसने पेज पर किया था

निरपराधों के ख़िलाफ़, 'अन्यों' के विरोध में हिंसा के महिमामण्डन बढ़ता सामान्यीकरण हमारे जैसे समाजों के नैतिकता के ताने-बाने को उजागर करता है। अब वक़्त आ गया है कि ऐसे हत्यारों को या ऐसी घटनाओं को हम व्यक्ति तक सीमित न रखें, अलग-थलग करके न देखें बल्कि उसे एक समग्र रूप में समझने की कोशिश करें। यह एक ऐसा मसला है जिस पर गहरे विचार विमर्श की ज़रूरत है। जर्मन नात्सी अधिकारी आइशमैन/19 मार्च 1906-1 जून 1962/-जिस पर यहूदियों के क़त्लेआम में सहभागिता आदि मुद्दों पर इस्राईल में मुक़दमा चला था और जिसे बाद में मौत की सज़ा सुनाई गई थी-के बारे में लिखते हुए हन्ना आरेंडट लिखती है–

आइशमैन प्रसंग की सबसे बड़ी उलझन यह है कि कितने सारे लोग उसके जैसे, और वे तमाम लोग न परपीड़क थे और न ही विक्रत मस्तिष्क, वह उस वक़्त भी और आज भी ज़बरदस्त रूप में सामान्य लोग थे। अपनी क़ानूनी संस्थाओं के नज़रिये से देखें और अपने फ़ैसलों के अपने नैतिक पैमानों को टटोले तो उन तमाम अत्याचारों के समक्ष भी यह सामान्य स्थिति बहुत डरावनी थी।

(The trouble with Eichmann was precisely that so many were like him, and that the many were neither perverted nor sadistic, that they were, and still are, terribly and terrifyingly normal. From the viewpoint of our legal institutions and of our moral standards of judgment, this normality was much more terrifying than all the atrocities put together.)

हमारे युग के 'नए हीरो के आविर्भाव' से हम इस स्थिति से शायद पहली बार रूबरू हो रहे हैं। प्रश्न उठता है कि क्या हम सभी इसे देख पा रहे हैं? ■■

श्रद्धांजलि



नईम अलहिन्दी

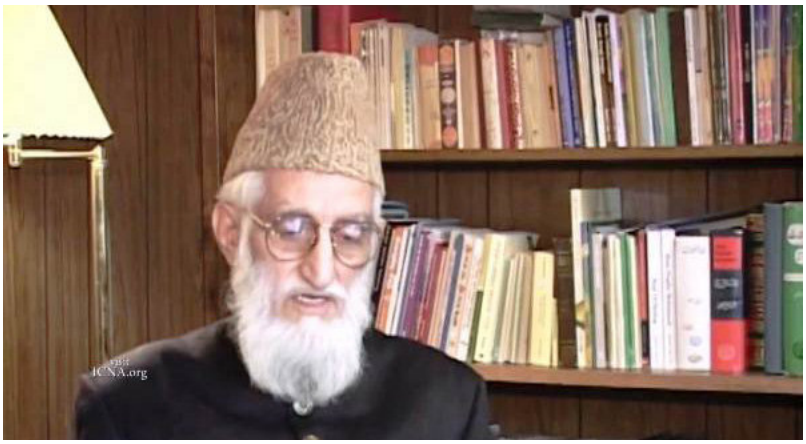

एक महान मार्गदर्शक का जाना

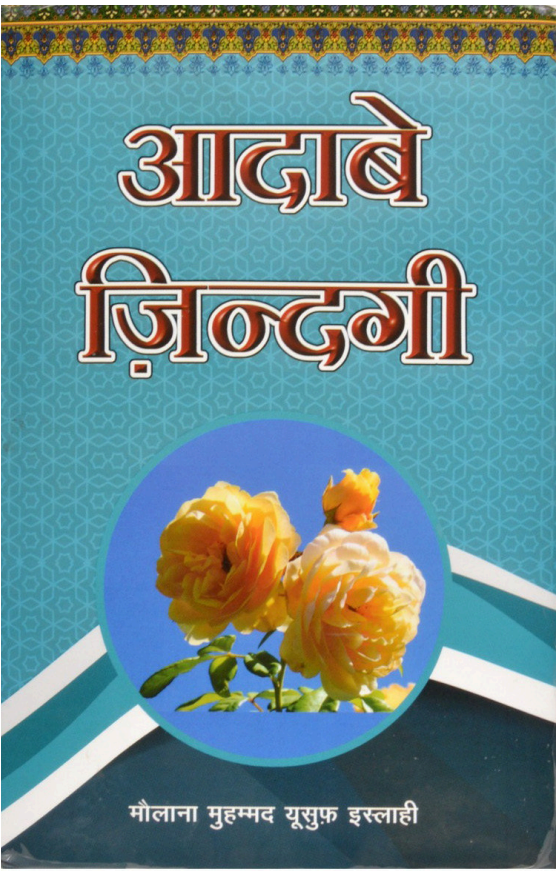

भारत के जाने-माने विद्वान, महान उपदेशक और मार्गदर्शक मौलान यूसुफ़ इस्लाही साहब ने गत माह इस नश्वर संसार को अलविदा कह दिया। मौलाना का संपूर्ण जीवन, उनके कार्य और उपलब्धियां उन तमाम लोगों के लिए एक मिसाल है जो इल्म हासिल करना चाहते हैं और कुछ कर गुज़रना जिनका मक़सद है। उनके जीवन के मूल में एक ठहराव है, चीज़ों को समझने का धैर्य है और उन्हें अभिव्यक्त करने का सलीक़ा है। इस तरह का हुनर हासिल करना कोई एक दिन का काम नहीं, बल्कि वर्षों तपने और खपने का फल है। मौलाना के जीवन के तमाम पहुओं को महज़ कुछ शब्दों में संजोना संभव नहीं है। मैं जानता हूं कि उनके किरदार का एक सिरा थामूंगा तो दूसरा छूट जाएगा, लेकिन अपने आपको सफल महसूस करूंगा यदि इस किरदार का एक सिरा भी आपके सामने रख पाया। मौलान यूसुफ़ इस्लाही साहब की जीवन यात्रा का हरेक मोड़ प्रेरणा है, आत्मविश्वास की खदान और गहरे संकल्पों का सागर है, जहां से हम अपने हिस्से के मोती चुन सकते हैं।

मौलाना यूसुफ़ इस्लाही साहब का जन्म वर्ष 1932 में उत्तर प्रदेश के ज़िले बरेली में एक विद्वान घराने में हुआ था। उनके पिता मौलाना अब्दुल क़दीम ख़ान तफ़्सीर और हदीस के एक महान विद्वान थे। मौलाना यूसुफ़ इस्लाही साहब की प्रारंभिक शिक्षा और लालन-पालन बरेली में ही हुआ। क़ुरआन हिफ़्ज़ और तजवीद पढ़ने के बाद आपने बरेली इस्लामिया इंटर कॉलेज से हाईस्कूल पास किया। इसके बाद अपने पिता की इच्छा के अनुसार आप मज़ाहिरुल उलूम सहारनपुर में दाख़िला लिया, जहां दो वर्ष शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात आप मदरसा अल-इस्लाह सराय मीर आज़मगढ़ चले गए। यह वही मदरसा है जहां पर हिंदुस्तान में जमाअत इस्लामी हिन्द का पहला मर्कज़ बना और इसी मदरसे ने मौलाना अमीन अहसन इस्लाही, मौलाना अख़्तर अहसन इस्लाही, मौलाना सदरुद्दीन इस्लाही और मौलाना अबुलैस इस्लाही जैसी महान विभूतियों और प्रख्यात विद्वान हमें दिए।

मौलाना यूसुफ़ इस्लाही इसी मदरसे

के शिक्षकों विशेषकर मौलाना अख़्तर अहसन इस्लाही से लाभांवित हुए और अपनी विशिष्ट प्रतिभा द्वारा उत्कृष्टता का प्रमाण दिया। मदरसा अल-इस्लाह से स्नातक होने के बाद आपने जमाअत इस्लामी हिन्द की सदस्यता ग्रहण की, उस समय आपकी आयु महज़ 25 वर्ष थी। मौलाना मार्गदर्शन के मैदान में लगभग आधी सदी तक सक्रिय रहे। उनके भाषणों, पाठों और लेखन ने लाखों लोगों के जीवन को क्रांतिकारी ढंग से बदल डाला। उनके भाषण और क़ुरआन की शिक्षाओं का प्रस्तुतीकरण बेहद प्रभावी था। उनके कुछ व्याख्यान और भाषणों को यूट्यूब पर भी देखा जा सकता है।

धैर्य के साथ बात कहने का सलीक़ा और उसी ठहराव के साथ विषयों की गंभीर जानकारी श्रोताओं और पाठकों तक पहुंचाने का हुनर अन्य कहीं विरल है। यदि आप किसी इस्लामी विषय पर भ्रमित हो रहे हों या कहीं चूक रहे हों तो इनके भाषण और इनका लेखन आपका मार्गदर्शन करेगा। मौलाना का अध्ययन एवं विषयों की गहरी समझ कमाल की थी और कमाल की थी उनकी संप्रेषण क्षमता। उनके भाषणों और लेखन का अपना ही सौंदर्य शास्त्र है, जो सुनने और और पढ़ने वालों को मुग्ध कर देता है। अधीर को धीर कर सब कुछ समझा देने का हुनर मौलाना में बड़ी ही ख़ूबसूरती से समाहित था।

मौलाना की प्रारंभिक लिखित पुस्तक ''आदाबे-ज़िन्दगी'' को असाधारण प्रसिद्धि प्राप्त हुई। यह एक बहुत प्रभावी पुस्तक है, जो कि बहुत सरल भाषा में इस्लामी शिक्षाओं के अनुसार जीवन के शिष्टाचार का वर्णन करती है। भारत और पाकिस्तान में इसके बहुत से संस्करण प्रकाशित हुए और लाखों लोग इससे लाभान्वित हुए।

जमाअत इस्लामी हिन्द ने, अपने मुख्यालय में जो कि उन दिनों रामपुर में था, एक लेखन संस्थान की स्थापना की और मौलाना सदरुद्दीन इस्लाही को इसका प्रमुख बनाया गया। मौलाना मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ान, मौलाना जलालुद्दीन उमरी और अन्य विद्वानों के साथ मौलाना यूसुफ़ इस्लाही भी इस संस्थान के साथ जुड़ गए। उन्होंने वर्ष 1972 में एक संस्था 'ज़िकरा' की स्थापना की जिसके द्वारा मासिक पत्रिका ज़िकरा का संचालन शुरू किया और साथ ही एक मक्तबा (पाठशाला) की भी बुनियाद डाली।

रामपुर में जमाअत इस्लामी हिन्द के एक वरिष्ठ सदस्य मौलाना अबू सलीम अब्दुल हई ने लड़कियों की धार्मिक शिक्षा के लिए एक मदरसे की स्थापना की थी जो ''जमीयतुल सालिहात'' के रूप में विकसित हुआ। और देश-विदेश में ख़ूब नाम कमाया। मौलाना अब्दुल हई के बाद इसके प्रबंधन का कार्य जनाब तवस्सुल हुसैन और उनके के बाद मौलाना यूसुफ़ इस्लाही साहब को सौंपा गया। मौलाना ने इसे उन्नति के शिखर पर पहुंचा दिया। रामपुर में ही जमाअत की निगरानी में प्राथमिक शिक्षा के लिए एक स्कूल की स्थापना की गई। बाद में एक स्थानीय समिति का गठन करके इसके प्रबंधन का कार्य इस समिति को सौंपा गया और मौलाना यूसुफ़ इस्लाही साहब को इसका अध्यक्ष बनाया गया। ये दोनों संस्थान मौलाना के जीवन के अंतिम समय तक उनकी निगरानी में रहे।

मौलाना ने जमाअत इस्लामी हिन्द की विभिन्न ज़िम्मेदारियों को बख़ूबी निभाया। वह कई वर्षों तक प्रतिनिधि सभा केंद्रीय मजलिसे-शूरा और राज्य मजलिसे-शूरा के सदस्य रहे। वे नियमित रूप से इनकी सभाओं में उपस्थित रहते और उन्हें परामर्श भी देते। मौलाना ने क़ुरआन, हदीस, शरह (धर्मशास्त्र) और कई अन्य विषयों पर छोटी-बड़ी लगभग एक दर्जन किताबें लिखीं, जिनमें से कुछ को भारत की अन्य भाषाओं में अनुवाद किया गया और जिन्हें भारतीय उपमहाद्वीप भारत-पाक समेत अन्य देशों में बहुत लोकप्रियता मिली। इनमें क़ुरआन की शिक्षाएं, आदाबे-ज़िन्दगी, दायी-ए-आज़म सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम, आसान फ़िक़्ह, रोशन सितारे, शमा-ए-हरम, शऊर-ए-हयात, तज़्कीर-उल-क़ुरआन (तफ़्सीर सूरह यासीन), तज़्कीर-उल-क़ुरआन (तफ़्सीर सूरह सफ़), दर्से-क़ुरआन, क़ुरआन को समझकर पढ़ें, मुताला क़ुरआन क्यों और किस तरह?, तफ़हीमुल हदीस, गुलदस्ता हदीस, तदरीस रसूल (सल्ल.), इस्तक़बाल-ए-रमज़ान, क़यादत के औसाफ़ और उम्मत की ज़िम्मेदारियां, ख़त्मे-नुबूवत क़ुरआन की रोशनी में, अक़ीदा ख़त्मे-नुबूवत और तक़ाज़े, इस्लामी मुआशरा और उसकी तामीर में ख़्वातीन का हिस्सा, हुस्ने मुआशत और उसकी तकमील में ख़्वातीन का हिस्सा, ख़ानदानी इस्तेहकाम आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मौलाना ने कई यात्राएं भी कीं और भारतीय उपमहाद्वीप के देशों के अलावा इंग्लैंड, अमेरिका, जापान, ऑस्ट्रेलिया और खाड़ी के अधिकतर देशों का दौरा किया। मौलाना ने सक्रिय जीवन जिया। और आज के इस ज़माने में जब किताबें पढ़ने का चलन कम होता जा रहा है, आवश्यकता इस बात की है कि हम ऐसे उपदेशक, विद्वान और धार्मिक व्यक्तियों की रचनाओं का अध्ययन करें। क्योंकि एक सफल और समृद्ध जीवन जीने के लिए पुस्तकों का पढ़ना निश्चित रूप से उपयोगी होता है। ■■

स्मृति

मुबीन अली अंसारी

गुमनाम शहीद

वर्ष 1820 में उत्तर प्रदेश के आज़मगढ़ के मुहम्मदपुर गांव जन्मे पीर अली किशोर अवस्था में ही घर से भागकर पटना चले गए थे। यहां एक नवाब मीर अब्दुल्लाह ने उनकी परवरिश की। मीर साहब की मदद से पीर अली ने पटना में किताबों की एक दुकान खोल ली। कुछ लोग पीर अली ख़ां को जिल्दसाज़ भी बताते हैं। कामकाज के सिलसिले में वे कुछ क्रांतिकारियों के संपर्क में आए और उनकी यह दुकान धीर-धीर क्रांतिकारियों के अड्डे में तब्दील हो गई। उनकी दुकान पर क्रांतिकारी साहित्य मगाए जाते, फिर वहां से बेचे जाते थे। देश की आज़ादी पीर अली के जीवन का उद्देश्य बन गई थी। उसी दौरान दिल्ली के क्रांतिकारी अज़ीमुल्लाह ख़ान से उनका संपर्क







बन गया और आसपास के इलाक़ों में घूम-घूमकर उन्होंने क्रांतिकारी मिज़ाज के युवाओं को संगठित और प्रशिक्षित करना शुरू कर किया।

1857 की क्रांति का बिहार में भी भारी असर हुआ। गया, छपरा, पटना, मुज़फ़्फ़रपुर और मोतिहारी जैसी जगहों में क्रांति भड़क चुकी थी। क्रांतिकारियों का मुक़ाबला करने के लिए अंग्रेज़ों ने दानापुर में एक छावनी स्थापित की, लेकिन दानापुर के सैनिक मेरठ की घटनाओं के कारण अंग्रज़ों से असंतुष्ट थे और वे क्रांतिकारियों का साथ दे रहे थे। पटना के नागरिकों ने भी अंग्रज़ों के ख़िलाफ़ संगठन खड़े किए थे। अंग्रेज़ अधिकारी इन सब पर पैनी नज़र रखे हुए थे। तीन जुलाई 1857 अनेक सशस्त्र युवा पीर अली के घर इकट्ठा हुए। फिर पीर अली के नेतृत्व में कई टुकड़ियों में बंटकर आज़ादी के उन दीवानों ने गुलज़ारबाग़ स्थित अंग्रेज़ों के उस प्रशासनिक भवन को घेर लिया, जहां से क्रांतिकारी गतिविधियों पर नज़र रखी जाती थी। वहां तैनात अंग्रेज़ आधिकारी डॉ. लॉयड ने क्रांतिकारियों पर गोलियां चलवा दी। जवाब में क्रांतिकारियों की ओर से भी गोलियां चलने लगीं। दो तरफ़ा गोलीबारी में कुछ क्रांतिकारी शहीद हो गए, तो लॉयड और उसके कुछ सैनिक भी मारे गए। जबकि पीर अली अपने कुछ साथियों के साथ बच निकलने में सफल हुए।

अंग्रेज़ों का दमन चक्र चला और अनेक निर्दोष लोगों की गिरफ़्तारियां हुईं। कुछ के घर तोड़े गए, तो कुछ को मौत के घाट उतार दिया गया। आख़िरकार 5 जुलाई, 1857 को पीर अली और उनके चोदह साथियों को बग़ीवत के जुर्म में गिरफ़्तार कर लिया गया। यातनाओं के बीच पटना के कमिश्नर मि. टेलर ने पीर अली को लालच दिया कि अगर वह अपने क्रांतिकारी साथियों के नाम बता दें, तो उनकी जान बच सकती है। पीर अली ने उनका प्रस्ताव ठुकराते हुए कहा, ''ज़िंदगी में कई मौक़े ऐसे आते हैं, जब जान बचाना ज़रूरी होता है। कई मौक़े ऐसे भी आते हैं, जब जान देना ज़रूरी हो जाता है। यह वक़्त जान देने का है।''

ब्रिटिश हुकूमत ने दिखावटी जांच के बाद 7 जुलाई, 1857 को पीर अली को उनके साथियों के साथ बीच सड़क फांसी पर लटका दिया। पीर अली का बलिदान व्यर्थ नहीं गया। 25 जुलाई को दानापुर के देसी सैनिकों ने जगदीशपुर के बाबू कुंवर सिंह के नेतृत्व में ख़ुद को आज़ाद घाषित कर दिया।

अंग्रेज़ों का दमन चक्र चला और अनेक निर्दोष लोगों की गिरफ़्तारियां हुईं। कुछ के घर तोड़े गए, तो कुछ को मौत के घाट उतार दिया गया। आख़िरकार 5 जुलाई, 1857 को पीर अली और उनके चोदह साथियों को बग़ीवत के जुर्म में गिरफ़्तार कर लिया गया। यातनाओं के बीच पटना के कमिश्नर मि. टेलर ने पीर अली को लालच दिया कि अगर वह अपने क्रांतिकारी साथियों के नाम बता दें, तो उनकी जान बच सकती है। पीर अली ने उनका प्रस्ताव ठुकराते हुए कहा, "ज़िंदगी में कई मौक़े ऐसे आते हैं, जब जान बचाना ज़रूरी होता है। कई मौक़े ऐसे भी आते हैं, जब जान देना ज़रूरी हो जाता है। यह वक़्त जान देने का है।"

पीर अली के नाम पर पटना में एक मोहल्ला पीरबहोर आबाद है, लेकिन इस क्रांतिकारी के बारे में लोगों को ज़्यादा मालूम नहीं। कुछ साल पहले बिहार सरकार उनके नाम पर गांधी मैदान के पास एक छोटा-सा पार्क बनवाया, शहर को हवाई अड्डे से जोड़ने वाली एक प्रमुख सड़क को ''पीर अली रोड'' नाम दिया और सात जुलाई को उनके शहादत दिवस पर समारोहों का आयोजन शुरू किया। ■■

दहेज के ख़िलाफ़ सराहनीय मुहिम

दहेज के ख़िलाफ़ समाज में जागरूकता लाने की उलेमा की कोशिशों को काफ़ी सराहा जा रहा है और कहीं-कहीं इसका प्रभाव भी दिख रहा है। ख़बरों के मुताबिक़ मुसलमानों के दीनी मामले की प्रमुख संस्था ऑल इंडिया मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड समेत कई मुस्लिम संगठनों ने शादियों को कम ख़र्चीला और सादगी भरा बनाने के लिए बड़े स्तर पर 'आसान निकाह मुहिम' चलाया जिसका असर समाज में दिखा। मुस्लिम पर्सनल लॉ बोर्ड और कुछ अन्य संगठनों की ओर से दहेज के ख़िलाफ़ एक जागरूकता अभियान चलाया गया। इस अभियान से प्रभावित होकर कानपुर में सादगी से मस्जिदों में निकाह के मामले बढ़े हैं। टू सर्किल्स डाट नेट की ख़बर में एक रिपोर्ट के हवाले से कहा गया कि बीते साल क़रीब 7 हज़ार निकाह मस्जिदों में सादगी के साथ संपन्न हुए। इसके अलावा दहेज की मांग और लेन-देन के मामलों में भी कमी आयी है।



कानपुर में स्थानीय स्तर पर सुन्नी उलेमा काउंसिल ने बड़े स्तर पर सादगी से निकाह मुहिम के तहत मुस्लिम समाज को जागरूक किया। मीडिया में आई ख़बरों के अनुसार इससे कानपुर में सादगी से निकाह करने का चलन बढ़ा है। इसके साथ ही दहेज के लेन-देन में भी कमी आयी है। मुहिम से हो रहे सकारात्मक बदलाव से उलेमा में उम्मीद जगी है। इस मामले में शहर क़ाज़ी मौलाना मुश्ताक़ मुशाहिदी का कहना है कि जब से उन्होंने फ़िज़ूलख़र्ची वाली शादियों में निकाह पढ़ाने से इन्कार किया तब से काफ़ी बदलाव आया है। बैंड, आतिशबाज़ी में कुछ कमी आयी है और बेतहाशा दहेज और दहेज का दिखावा करना जैसे मामले भी कम हुए हैं। सुन्नी उलेमा काउंसिल के महासचिव हाजी मुहम्मद सलीम का कहना है कि सभी शहर क़ाज़ी इस मुहिम को अपने-अपने स्तर पर बढ़ावा दे रहे हैं। अब समाज के बीच जाकर सादगी से निकाह का पैग़ाम देना है।

नफ़रत के ख़िलाफ़ प्रदर्शन

गत दिनों धर्म संसद के नाम पर हुई चरमपंथी सभा के ख़िलाफ़ देश में रोष है। अनेक बुद्धिजीवियों और अम्नपसंदों ने इसकी तीखी निंदा की है। पिछले दिनों देहरादून इस नफ़रत के ख़िलाफ़ लोगों ने अपना विरोध दर्ज कराया। मुस्लिम सेवा संगठन के बैनर तले बड़ी संख्या में प्रदर्शनकारी कनक चौक पर जमा हुए। इसके बाद नारेबाज़ी करते हुए पुलिस मुख्यालय के लिए निकले। पुलिस ने सचिवालय से पहले बैरिकेडिंग करके उनको आगे बढ़ने से रोक दिया। इस दौरान प्रदर्शनकारियों की पुलिस से तीखी नोक-झोंक हुई। इसके बाद प्रदर्शनकारी वहीं धरने पर बैठ गए। प्रदर्शनकारियों के धरने को देखते हुए पुलिस ने उनके एक प्रतिनिधिमंडल को डीजीपी अशोक कुमार से मुलाक़ात की अनुमति दी। प्रतिनिधिमंडल ने डीजीपी से मिलकर अपनी मांग रखी। प्रदर्शनकारियों का कहना था कि धर्म संसद दो समुदाय को लड़ाने की कोशिश कर रहा है। यदि दोषियों के ख़िलाफ़ कार्रवाई नहीं की गयी तो प्रदेश भर में आंदोलन किया जाएगा।



खनन कंपनियों के ख़िलाफ़ किसानों की जीत



किसानों को उम्मीद है कि उनकी ज़मीन अब पहले जैसी उपजाऊ हो पाएगी और उन्हें सिंचाई के लिए प्रदूषित नहीं साफ़ पानी मिलेगा। यहां के किसानों ने कोर्ट में दो बड़ी निजी कंपनियों को हराकर एक ऐसी लड़ाई जीती है, जिसका असर उनके जैसे लाखों किसानों पर पड़ेगा। खनन कंपनियों के कारण अपनी आजीविका खो चुके बिस्वाल और उनके चार किसान साथियों ने यह ऐतिहासिक लड़ाई जीती। अदालत ने 'दुर्लभ फ़ैसले' में कंपनियों को सज़ा सुनाई है।

नेशनल ग्रीन ट्राइब्न्यूनल ने हिंडाल्को इंडस्ट्रीज और रायपुर एनर्जेन को तालाबिरा-1 कोयला ब्लॉक की सफ़ाई के लिए 10 करोड़ रुपये जमा कराने का आदेश दिया है। यह ब्लॉक वर्ष 2018 में बंद हो गया था। 65 वर्षीय बिस्वाल कहते हैं, हमारे चारों तरफ़ खदानें हैं जिन्होंने हमारी ज़मीन, हवा और पानी सब बर्बाद कर दिया है। इस लड़ाई को मैं दस वर्षों से लड़ रहा हूं और आख़िर उम्मीद की एक किरण नज़र आयी है कि जो थोड़ा-बहुत बचा है उसे हम बचा पाएंगे और फिर से खेती कर पाएंगे। ट्रिब्यूनल ने सरकार को आदेश दिया है कि विशेषज्ञों की एक समिति बनाई जाए जो तालाबिरा-1 ब्लॉक में प्रभावितों को मुआवज़ा तय कर सके। समिति को तीन महीने के भीतर जीर्णोद्धार योजना भी तैयार करनी होगी। बिस्वाल जैसे प्रभावित किसान समिति से अपने नुक़सान के लिए मुआवज़ा मांग सकते हैं। कोई भी कंपनी जब किसी कोयला खदान को बंद करती है तो उसके एक साल पहले उसे बताना होता है कि क्षेत्र का जीर्णोद्धार कैसे होगा।

पूंजी पलायन चिंता का सबब



भारतीय रिजर्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार, बीते ढाई वर्षों में भारत का पूंजी खाता ऋणात्मक रहा है। जितनी पूंजी हमें मिली है उससे ज़्यादा पूंजी हमारे देश से बाहर गई है और यह पलायन लगातार जारी है। कोरोनाकाल में देश से पूंजी का पलायान होना चिंता का विषय है। वर्ष 2020 से देश कोरोना महामारी की संकट से जूझ रहा है। महामारी को नियंत्रित करने के लिए लगाए गए लॉकडाउन की वजह से कई कंपनियां बंद हो गईं। करोड़ों लोगों की रोज़ी-रोटी छिन गई एवं अनेक लोगों के वेतन में कटौती की गई। देश में बेरोज़गारी, ग़रीबी और भुखमरी चरम सीमा पर पहुंच चुकी है। ऐसी परिस्थितियों में देश से पूंजी के पलायन की वजह से अर्थव्यवस्था की स्थिति और अधिक बदतर हो चुकी है। किसी भी देश के विकास में पूंजी का बड़ा योगदान होता है। यदि कोई देश पूंजी के पलायन को नहीं रोक पाएगा और विदेशी पूंजी को आकर्षित नहीं कर पाएगा, तो वह देश कभी भी विकसित राष्ट्र की श्रेणी में नहीं आ सकता।

फ़िल्म समीक्षा



उज़्मा सरवत

‘जय भीम’

यथार्थ का आईना

किसी भी फ़िल्म को देखने से पहले एक आम दर्शक के ज़ेह्न में अमूमन पहला सवाल यही होता है कि कहानी के नायक-नायिका कौन हैं? और फिर ये कि कहानी किसके बारे में है? कुछ दर्शक फ़िल्म के मक़सद को भी जानना चाहते हैं कि आख़िर फ़िल्म को बनाने के पीछे निर्देशक का उद्देश्य क्या है? मेरा मानना है कि ‘जय भीम’ को यह समझकर न देखा जाए कि ये एक बुराई पर अच्छाई की जीत या न्याय और अन्याय की लड़ाई की कहानी है।



यह कहानी व्यवस्था द्वारा पोषित दमन को चुनौती देने में आने वाली कठिनाइयों की है। यह कहानी व्यवस्था के खोखले मूल्यों को उजागर करती है जहां सही-ग़लत का फ़ैसला सामाजिक प्रतिष्ठा तथा पहचान पर निर्भर करता है। यह कहानी उन सभी सवालों का जमा है जिसे मुख्यधारा का सिनेमा जगत आमतौर पर बड़ी आसानी से नज़रंदाज़ कर देता है।

यह कहानी उन तमाम घटनाओं को ठीक वैसे ही दिखाने की पूरी कोशिश करती है जैसी वे अस्ल ज़िन्दगी में हैं। हिंसा, असहायता, बर्बरता और दमन अगर हमें विचलित करते हैं तो करना भी चाहिए। हमारे अन्दर करुणा और दूसरों के लिए करुणा महसूस करने की क्षमता होनी ही चाहिए जोकि हमारे



मनुष्य होने का सबूत है। कहानी सुनाने वाले की क्या यह भी ज़िम्मेदारी है कि वह किरदारों की यातना भरी आप-बीती सुनाते समय हमारी सुविधा का ख़याल करे? दर्शकों की सहजता के लिए सीधी बात न रखकर ख़ुद ही ज़रूरी बातें सेंसर कर दे? आधे सच का प्रभाव क्या उतना ही है जितना कि पूरे सच का? 'जय भीम' दर्शकों की असहजता की बजाय कहानी की मौलिकता के प्रति अपनी वफ़ादारी को ज़रूरी समझती है।

इन तमाम सवालों पर विचारों में मतभेद हो सकते हैं मगर मेरी नज़र में मतभेद होना अभिव्यक्ति में रुकावट का कारण नहीं बनना चाहिए। 'जय भीम' अपनी अभिव्यक्ति में एक पक्ष लेती है जो आपसे भिन्न भी हो सकता है और आपके समान भी। न तो दर्शक अपने निजी विचारों के असर से मुक्त हो सकता है और न ही निर्देशक, दोनों को ही इसे स्वीकार करते हुए खुले ज़ेह्न से फ़िल्म को देखने अथवा बनाने की प्रक्रिया को अंजाम देना चाहिए।

नायक-नायिका आप ख़ुद चुन लीजिए क्योंकि फ़िल्म की कहानी कहीं तो बेहद प्रत्यक्ष रूप से विभिन्न पहलुओं पर आपको अपना नज़रिया बनाने पर उकसाती है, मगर कहीं कुछ बातें नेपथ्य में बजते गाने या कविता के सहारे धीमे से रख जाती है। बल्कि आप जैसे-जैसे कहानी में डूबते चले जाते हैं आपके लिए यह सवाल ही गौण हो जाता है। यह कहानी पहली बार पर्दे पर इतनी बेबाकी से प्रदर्शित होने के बावजूद भी हम सबकी आत्मा को झकझोर कर पूछती है कि क्या हम ऐसी कहानियों के गवाह नहीं रहे हैं? क्या हमें नहीं मालूम कि व्यवस्था के सिपाहियों की ऐसी निरंकुशता और बर्बरता पर उंगली उठाने के लिए कितने पंजों से जूझने को कमर कसना पड़ता है? यह कहानी इस बात को दर्ज करती है कि न्याय की ख़ातिर व्यवस्था के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ने के लिए कितनी तरह की परेशानियां और किन-किन स्तरों पर वार झेलने पड़ते हैं।

यदि आप वंचित तथा पीड़ित समाज से आते हैं तो आपके लिए अपने हक़ की लड़ाई किसी युद्ध से कम नहीं है। अब ये युद्ध क्या बिना प्रिविलेज की सहायता के ख़ाली हाथ लड़ी जा सकती है? अब तक के इतिहास में इसके उदाहरण लगभग न के बराबर हैं।

फ़िल्म की पटकथा एक सत्य घटना पर आधारित है। बीबीसी मराठी की वर्ष 2006 की इस घटना से संबंधित मद्रास उच्च न्यायालय के फ़ैसले के अध्ययन के मुताबिक़ 1993 में तमिलनाडु के मुदन्नी गांव में ईरुला आदिवासी समुदाय के सदस्य राजकन्नू को चोरी के आरोप में गिरफ़्तार किया गया और हिरासत में ही पुलिस बर्बरता की वजह से उनकी मौत हो गयी। मगर पुलिस ने प्रचारित किया कि राजकन्नू हिरासत से फ़रार हो गया है, जिसके अगले ही दिन पास के एक अन्य थाना क्षेत्र में एक लाश बरामद होने की ख़बर मिली। लाश को लावारिस मानकर रिकॉर्ड दर्ज किया गया था। यह बात उस समय सेंगई (राजकन्नू की पत्नी)

के संज्ञान में नहीं थी। रिपोर्ट में लाश पर चोट के गहरे निशान और टूटी पसलियों का ज़िक्र था। पुलिस ने सेंगई के पति के भाई, बहन तथा एक अन्य आरोपियों पर भी ख़ूब ज़ुल्म किया, यहां तक कि सेंगई के बेटे तक को नहीं बख़्शा। पुलिस ने राजकन्नू की भाभी के साथ पूछताछ के दौरान अभद्र व्यवहार किया। उनके बयान के मुताबिक़, पुलिस द्वारा उनके कपड़े चीर दिए गए थे। पूरे परिवार पर शारीरिक अथवा मानसिक प्रताड़ना की लगभग सारी हदें पार कर दी गई थी। इस क़दर ज़ुल्म के बाद भी सेंगई को न्याय की ओर ले जाने वाला कोई रास्ता नहीं मिल रहा था। ऐसे प्रसंग देखकर हक़ के साथ ताक़त की आवश्यकता जैसे सवाल लगभग तमाचे की तरह पड़ते हैं। इसके बाद तेरह वर्षों तक न्याय के लिये राजकन्नू की पत्नी सेंगई के संघर्ष की कठिन यात्रा शुरू हो जाती है। उन्होंने अकेले ही तमाम अधिकारियों तथा अदालतों के चक्कर लगाना शुरू कर दिया, जब तक कि वे अपने वकील तक नहीं पहुंच गई।

भूतपूर्व जस्टिस चंद्रू, जो उन दिनों चेन्नई में बतौर वकील कार्यरत थे, ने सेंगई का केस अपने हाथ लेकर दृढ़ता व मज़बूत इरादे के साथ लड़कर उन्हें न्याय दिलवाने में कामयाबी हासिल की थी। जस्टिस चंद्रू मानवाधिकार-हनन के मामलों को बिना फ़ीस के लड़ते थे, इसलिए सेंगई की मदद संभव हो पायी। उन्होंने हेबियस कॉरपस (बंदी प्रत्यक्षीकरण) की याचिका के साथ मद्रास उच्च न्यायालय का दरवाज़ा खटखटाया, जिसमें प्रशासन पर यह ज़िम्मेदारी आयद होती है कि वह गिरफ़्तार व्यक्ति को अदालत में पेश करे। इसके बाद ही जाकर या बात खुली कि राजकन्नू की मौत हो चुकी है, लेकिन यह साबित न हो सका कि हिरासत में उनकी हत्या की गयी है। मामला सीबीआई जांच के आदेश के साथ सेशन कोर्ट से होते हुए सबकी नज़रों में आने लगा और अंततः सेशन कोर्ट के फ़ैसले के ख़िलाफ़ तमिलनाडु सरकार के मद्रास उच्च न्यायालय में निवेदन के बाद तेरह वर्षों से खिंचते चले आ रहे इस कलंक पर वर्ष 2006 में न्याय की मुहर लगी।

इस फ़िल्म को लेकर यह सवाल उठता है कि किसी भी सामाजिक न्याय के मुद्दे से जुड़ी फ़िल्म का आकलन किन स्तरों पर होना चाहिए? मेरा ख़याल है कि फ़िल्म का आकलन एक अच्छी पटकथा, ज़रुरी मुद्दा, चित्रण में गंभीरता और संवेदनशीलता, निर्देशन, अभिनय में मौलिकता, उससे होने वाले समाज पर प्रभाव तथा उससे उठने वाले विमर्श की महत्ता तथा गुणवत्ता के आधार पर होना चाहिए।

यह तो थी अस्ल घटना, जिसके आधार पर निर्देशक टीजे ज्ञानवेल ने 'जय भीम' के रूप में एक बेहद निर्भीक प्रस्तुति देकर पूरे देश के अलावा विश्व भर के सिनेमा दर्शकों तथा आलोचकों में हलचल पैदा कर दी है। जस्टिस चंद्रू का किरदार निभाया है जाने-माने अभिनेता सूर्या ने तथा लिजोमॉल होजे ने सेंगई का।

इस फ़िल्म को लेकर यह सवाल उठता है कि किसी भी सामाजिक न्याय के मुद्दे से जुड़ी फ़िल्म का आकलन किन स्तरों पर होना चाहिए? मेरा ख़याल है कि फ़िल्म का आकलन एक अच्छी पटकथा, ज़रूरी मुद्दा, चित्रण में गंभीरता और संवेदनशीलता, निर्देशन, अभिनय में मौलिकता, उससे होने वाले समाज पर प्रभाव तथा उससे उठने वाले विमर्श की महत्ता तथा गुणवत्ता के आधार पर होना चाहिए।

आलोचकों का सवाल हो सकता है कि सूत्रधार अगर ईरुला समुदाय का नहीं तो कहानी की प्रमाणिकता को कटघरे में खड़ा किया जाए। सवाल यह भी होना चाहिए कि जब तक ईरुला समुदाय से कोई आकर ख़ुद सूत्रधार न बने तब तक ऐसी ज़रूरी घटना का चित्रण न करना और ऐसे किसी भी दलित-आदिवासी विमर्श में हिस्सा न लेना कहां तक उचित है? क्या आने वाले समय में उस ईरुला समुदाय के व्यक्ति के लिए राह बनाना आज के निर्देशकों तथा कहानीकारों का उत्तरदायित्व नहीं? बात जहां तक जस्टिस चंद्रू के किरदार को मसीहा के तौर पर दिखाने की है तो मेरी नज़र में राजकन्नू के न्याय के लिए जस्टिस चंद्रू के अथक प्रयासों तथा सेंगई की चट्टान जैसी हिम्मत में से किसी को भी कम श्रेय नहीं दिया जा सकता।

'जय भीम' न्याय के संघर्ष में हाशिये के लोगों पर गुज़रते बेशुमार ज़ुल्म के साथ ही न्यायिक की विडंबना की भी कहानी है। यह कहानी जीवन भर हमें अमानवीय अत्याचारों के ख़िलाफ़ खड़े होने के लिए हिम्मत देने के लिए है। यह कहानी हमारी आत्मा के समीप एक पुराने जुर्म की याद के तौर पर मंडराते रहने के लिए है। ■■

(लेखिका कॉग्निटिव साइंस से एमएससी, आईआईटी गांधीनगर)

Shiraz Golden Restaurant



Casual Dining - Biryani,
North Indian,
Kebab, Chinese,
Mughlai, Arabian, Rolls
Park Street Area















C/279, Santoshpur Road, Santoshpur, Kolkata - 700075,
Near Big Bazaar, Panchasayar, Survey Park (Map)
Phone No:03322866806/919874128600/03324164591

आख़िरी पन्ना



डॉ. फ़रहत हुसैन

ईश्वर का इन्कार क्यों ?

“जिन लोगों ने कुफ़्र (न मानने) की नीति अपनाई और कुफ़्र की ही हालत में मरे, उन पर अल्लाह और फ़रिश्तों और सारे इन्सानों की फिटकार है। इसी तिरस्कार की हालत में वे हमेशा रहेंगे, न उनकी सज़ा में कमी होगी और न उन्हें फिर कोई दूसरी मुहलत दी जाएगी।”

(क़ुरआन, 2:161-162)



क़ुरआन की इस आयत का आशय यह है कि जो लोग ईश्वर और उसकी सत्ता और उसकी स्पष्ट वास्तविकताओं का इन्कार कर देते हैं और मरते दम तक उस पर ही जमे रहते हैं, अडिग रहते हैं तो वे लोग ईश्वर की नाराज़गी का शिकार होते हैं। मृत्यु तक उनके पास पलटने का अवसर होता है कि वे अपनी ग़लती को मान लें और पश्चाताप करके अपनी ग़लती को सुधार लें।

यहां अरबी भाषा का शब्द कुफ़्र का इस्तेमाल किया गया है, जिसका अर्थ है इन्कार करना, रद्द करना या अस्वीकार करना। इन्कार करने के अनेक रूप या प्रकार हो सकते हैं। एक तो यह है कि इन्सान ईश्वर के अस्तित्व का ही इन्कार कर दे और उसकी प्रभुसत्ता को ही मानने से इन्कार कर दे या ईश्वर के अधिकारों और शक्तियों में दूसरों को साझी मान ले।

दूसरा इन्कार यह है कि इन्सान ईश्वर या अल्लाह को तो माने, मगर उसके पैग़म्बरों यानी ईशदूतों को मानने से इन्कार कर दे। तीसरा रूप यह भी हो सकाता है कि इन्सान ईश्वरीय सत्ता को तो माने उसके पैग़म्बरों को भी सैद्धांतिक रूप से मान ले, लेकिन उसका व्यवहार जान-बूझकर उनकी शिक्षाओं के प्रति

एक ओर यदि हम देखें तो पाते हैं कि यह पूरी कायनात, जिसमें सूरज, चांद, तारे आदि सभी कुछ ईश्वरीय नियमों का पालन करते हुए नज़र आते हैं। दूसरी ओर हम देखते हैं कि ईश्वर की ओर से इन्सान को उसके व्यवहार व विचार की स्वतंत्रता दी गई है। यदि वह इस स्वतंत्रता का अनुचित लाभ उठाते हुए ईश्वर के बताए गए नियमों का पालन नहीं करता है तो एक प्रकार से वह पूरे ब्रह्मांड के नियमों के विपरीत व्यवहार करता है, जिसके कारण उसके जीवन में भी अशांति पैदा होती है और ईश्वर के यहां भी वह दंड का भागी बनता है।

उल्लंघन और अवहेलना वाला हो।

भाइयों और बहनों इस संसार में ईश्वरीय सत्ता के चिन्ह चारों तरफ़ बिखरे हुए हैं। यह पूरा जगत और उसकी यह संतुलित व्यवस्था हमें यह बता रही है कि एक सर्वशक्तिमान ने इसको बनाया है और वही इसको चला रहा है। इसी प्रकार ख़ुद इन्सान, उसका जीवन, उसका जन्म, उसका शरीर और उसकी शक्तियां इसकी गवाही दे रही हैं कि एक बहुत बड़ी शक्ति ने उसको यह जीवन दिया है और उसके जीवन की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा भी वही कर रहा है।

इन्सान की समझदारी और उसकी कृतज्ञता यह है कि वह ईश्वर को माने और उसके द्वारा बताए गए जीवन विधान की पैरवी करे। यदि वह इसकी पैरवी नहीं करता है, इन्कार करता है तो वह एक प्रकार से पाप का भागी बन जाता है।

एक ओर यदि हम देखें तो पाते हैं कि यह पूरी कायनात, जिसमें सूरज, चांद, तारे आदि सभी कुछ ईश्वरीय नियमों का पालन करते हुए नज़र आते हैं। दूसरी ओर हम देखते हैं कि ईश्वर की



ओर से इन्सान को उसके व्यवहार व विचार की स्वतंत्रता दी गई है। यदि वह इस स्वतंत्रता का अनुचित लाभ उठाते हुए ईश्वर के बताए गए नियमों का पालन नहीं करता है तो एक प्रकार से वह पूरे ब्रह्मांड के नियमों के विपरीत व्यवहार करता है, जिसके कारण उसके जीवन में भी अशांति पैदा होती है और ईश्वर के यहां भी वह दंड का भागी बनता है।

दूसरी ओर यदि इन्सान पश्चाताप करके ईश्वर की ओर पलटता है, तो ईश्वर बेहद क्षमा करने वाला, कृपाशील और दयावान है। वर्तमान समय में इन्सान की जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान भी अपने पालनहार की ओर पलटने और उसी के प्रति समर्पित होने में है। ईश्वर हम सभी लोगों की सहायता करे। ■■

قادری دواخانہ کی کامیاب ترین یونانی دوائیں

LARGEST UNANI
G.M.P.
CERTIFIED COMPANY



گھٹیا کے درد میں؟

زعفرانی تیل®

کسی بھی قسم کے درد چوٹ موچ۔ گھٹیا۔ جلنے کٹنے اور بچوں کی مالش میں بہت ہی مفید ہے۔



گیسٹک کے درد میں

قادری قبض ٹروجن

بدہضمی، بھوک کی کمی، درد جگر، قبض، سینے کی جلن اور پیٹ کے امراض میں بہت ہی مفید ہے

پشٹک چورن



جریان، کثرت احتلام، سرعت انزال، ضعف باہ اور جملہ امراض مردانہ میں بہت مفید ہے

شوگر کی کامیاب دوا

ذیابطیش سی



مثانہ کو قوت پہنچاتی ہے۔ پیشاب کی زیادتی اور ذیابطیش سے ہونے والی کمزوری میں بے حد مفید ہے

Qadri Dawakhana™

An ISO 9001:2008 Certified Company

B-18, Nawab Wajid Ali Shah Road, Kol-24

(O) S-152, S. A. Farooquie Road. (Akra Road) Kolkata- 700 018

Ph. No. 2469-3173-2489-3539

www.qadridawakhana.com • E-mail : qadridawakhana80@yahoo.co.in

KANTI Monthly, New Delhi
FEBRUARY 2022
Posted on 20-21 January 2021
Published on 18 January 2021
Posted Delhi RMS Delhi-110006

RNI 53372/91
DL(S)-05/3147/2021-2023
LICENSED TO POST WITHOUT PREPAYMENT
License No. U(SE)-73/2021-2023
Total Pages with Cover: 52